कातना अेक अैसी निकम्मी चीज़ रहेगी, जैसे धर्म की केवल औपचारिक क्रियाअें होती हैं। अिसलिअे चरखा चलानेवालों और खादी पहनने वालों को सदा स्मरण रखना चाहिये कि हमें सत्य और अहिंसा की अुपासना करनी है। हमारा जीवन सत्यमय और प्रेममय होना चाहिये। पुरानी पद्धति के अनुसार अीश्वर की अुपासना में 'माला' (मणि-माला) का भी अेक स्थान है। पर वह हमारे व्यावहारिक जीवन में सहायक नहीं होती। अगर चरखे को हम अीश्वर की अुपासना का साधन मानें तो अुससे अीश्वर के चिंतन में मन अेकाग्र भी होता है और हमें सूत भी मिलता है। अिस प्रकार चरखा सत्य की अुपासना का अुपयुक्त साधन बनता है। हमारे जीवन में जहाँ कहीं असत्य हो, हमें अुसे दूर करना है। अगर हमसे कहीं छल, कपट या झूठ हो जाय तो हमें शर्म आनी चाहिये। भला-बुरा कोअी भी आदमी भगवा (गेरुवा) वस्त्र पहन सकता है। हमें अुसकी बुराअी मालूम न हो तो वेश के कारण ही हम अुसे वंदनीय मान लेते हैं, क्यों कि हज़ारों वर्षों में अैसा वेश पहनने वालों ने अपने आचरण से साबित कर दिया है कि अुसे पहननेवाला कितना पवित्र रहता है। अिसी प्रकार खादी पहननेवाले को और कातनेवाले को साबित करना है कि अुसका जीवन कितना सत्यमय और प्रेममय है।

व्यवहार के नामपर सत्यापलाप

यह सत्य कैसे सधेगा? क्या हर मौकेपर सत्य का आचरण करूं या नहीं, सत्य के आचरण से लाभ है या नहीं, अिसका बारबार विचार करते रहने के बाद कृति करने से वह सध सकेगा? अैसा करेंगे तब तो हम सामान्य रूप से सत्य का व्यवहार करते हुअे भी कअी दफ़ा असत्य आचरण करते रहेंगे। सत्य की सच्ची अुपासना तो अिसीमें है कि हमारी मन की वृत्ति ही सत्यमय हो जाय। थोड़ा-सा भी असत्य सामने आते ही वह हमें खटके और हम अुससे हट जायं। व्यावहारिक कठनाअियां देखकर कअी लोग प्रतिपादन करते हैं कि "कुछ विषम मौकोंपर असत्य का अवलंबन कर लेना ही व्यावहारिक सत्य है। अुसका अवलंबन न करने से हमारा हेतु ही विफल हो जाता है। अिसलिअे बाज दफ़ा कुछ असत्य ही सत्य है और हिंसा ही अहिंसा है, अैसा मान लेना चाहिये।" वे भाअी यह सिद्धान्त तात्त्विक भूमिका से रखते हैं और अुसके लिअे ज़ोरदार बहस करते हैं। लेकिन यह केवल हमारे मन को किसी प्रकार समझा लेने की बात है। हमारे दिल की कमज़ोरी है, जिसके कारण सत्याचरण से होनेवाले कष्ट को हम टालना चाहते हैं। व्यवहार में असत्य का समर्थन पग-पग पर कितना पाया जाता है! बेपारी कहते हैं कि झूठ के बिना बेपार चल ही नहीं सकता। कचहरी में जानेवाले कहते हैं कि कानून अैसे ही बने हैं कि असत्य सबूत दिये बिना हमारा सच्चा दावा भी साबित नहीं होता है; डॉक्टर लोग कहते हैं कि ग़लत ही क्यों न हो, पर बिना दिलासा दिलाये बीमार के जल्दी मर जाने का भय है; नृपनीति के अनेक रूप तो सर्वमान्य हुअे से दीखते हैं; अित्यादि अनेक बातें सत्य का रूप धारण किये बैठी हैं, जिनको लोग व्यावसायिक अीमानदारी (प्रोफेशनल ऑनेस्टी) कहते हैं। असत्य के अिस सामान्य रूप से आगे बढ़कर व्यक्ति भी अपने व्यक्तिगत नाना व्यवहारों में कअी बहाने देकर असत्य आचरण का समर्थन करता रहता है। और चूंकि, किस मौकेपर असत्य आचरण समर्थनीय माना जाय, अिसका न्यायाधीश वह खुद ही रहता है, अपनी सुविधा के अनुसार वह निर्णय भी कर लेता है और अेक के पीछे अेक, अैसे अनेक असत्यों में

सता रहता है। हमें सावधान रहना चाहिये कि अिस तरह से हम अपने दिल को भुलावे में न डालें। अगर स्वार्थ, भय या मोह से असत्य हो जाय तो अुसका समर्थन करते रहने की अपेक्षा अीश्वर से प्रार्थना करना चाहिये कि वैसा दोष फिर से न हो और सदा सत्य आचरण रखने के लिअे वह हमें बल दे। अैसी मनोवृत्ति रखने से हम से दोष कम से कम होंगे। नहीं तो व्यावहारिक मुद्दोंपर समर्थन करते रहने से दोष बढ़ते ही जायंगे। बुद्धिमान् आदमी जब दोष करता है और बहस करने की शक्ति रखता है तो वह सीधे अपनी ग़लती स्वीकार करने के बदले दोष का समर्थन करने लगता है। पर यह तरीक़ा आत्मशुद्धि का नहीं है।

विना कारण असत्य का आश्रय

आप ज़रा देखिये कि हम काम के लिअे नहीं, पर विनाकारण भी कितना झूठ बोलते हैं। खेल-कूद, में ठट्ठा-मस्करी में झूठ बोलना कोअी दोष ही नहीं समझते। छोटे बालकों को समझाने में तो झूठ का कितना आसरा लेते हैं! बालक जब हठपर चढ़ जाते हैं तब अुनको मनाने के लिअे नाना बहाने करते हैं। वह भी प्रारंभ में हमारे बहाने को सच मानकर हमारी बात मान लेता है। पर अैसे कुछ मौकों के बाद वह समझ लेता है कि अुसे हम ठग रहे हैं, तब फिर वह मानता भी नहीं और यह सीख लेता है कि अैसा असत्य करना शायद अच्छा काम ही है। अिस प्रकार हम बालकों को असत्य सिखाते हैं। स्वार्थ के लिअे असत्य काम करने का मोह न छूटे तो कम से कम बिनाकारण और अूपर बताये हुअे प्रसंगों में झूठ न बोले, अितना भी खयाल रख लें तो सत्य की ओर बढ़ने की हमारी प्रवृत्ति होगी। सत्य का संबंध केवल बोलने से ही नहीं आता है। बिना बोले भी हमारा मौन, व्यवहार और दिखावा आदि असत्य हो सकता है। यह असत्य कुछ सूक्ष्म रहता है। हम गुणी हैं, भले हैं, प्रतिष्ठावाले हैं आदि बताने के लिअे भी हमारे अनजाने असत्य आचरण हो जाता है या असत्य बातें मुँह से निकल जाती हैं। अिन सबसे हमको बचना चाहिये। केवल स्थूल सत्य ही नहीं, सूक्ष्म सत्य की भी अुपासना होनी चाहिये।

कताअी : सत्य-अहिंसा का प्रतीक

कताअी-मंडलों में शामिल होनेवालों को अिस प्रकार सत्य और प्रेम की अुपासना करनी है। अिसलिअे अिन मंडलों में कम लोग आ पावेंगे, अिसकी चिन्ता नहीं हैं। परंतु जो आवें वे कताअी को सत्य और अहिंसा के प्रतीक के रूप में अपनाने वाले चाहिये। हमें सदा अन्तःकरण-शुद्धि का प्रयत्न करते ही रहना चाहिये। अगर हम सचाअी का अैसा अुदाहरण बनेंगे तो आसपास के लोगोंपर अुसका कुछ असर पड़ेगा और आज जो भ्रष्टाचार की अितनी शिकायत सुनी जाती है वह कुछ अंश में कम हो सकेगी और अहिंसक समाज की रचना में मदद मिलेगी।

कताअी द्वारा अध्यात्म की जड़ें मज़बूत करें

देहात की सेवा आसान काम नहीं है। अुसका फल थोड़े समय में नहीं मिल सकेगा। अगर हमारी जड़ मज़बूत होगी तो ही हम अिसमें टिक कर रह सकेंगे, नहीं तो हमें निराश होना पडेगा। हमारे सेवा-जीवन की जड़ क्या हो, अिसका हमें ठीक भान होना चाहिये। सेवा के फल का ही लक्ष्य सामने रहा तो भय है कि हम विचलित हो जायंगे। हमारी जड़ें अध्यात्म की होनी चाहिये। अीश्वर में विश्वास रखकर हमसे जो कुछ बन सके, वह हम करें। अैसा आत्म-विश्वास रहनेपर कोअी भी तूफान हमें हिला नहीं सकेगा। अगर हमारी प्रेरणा केवल व्यावहारिक ही रही तो वह अधूरी साबित होगी। अिसलिअे

सेवक को अध्यात्म की अुपासना करते रहना चाहिये। हमें दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि आत्मा ही सत्य है और बाक़ी सब गौण। हमें सद्‌ग्रंथों का स्वाध्याय करते रहना चाहिये। पुरानी नित्य-कर्म की प्रथा शिथिल होती जा रही है। अुसकी जगह दूसरी नहीं आ पा रही है। अिसलिअे गीता, रामायण आदि ग्रंथों का स्वाध्याय और मनन करते रहना चाहिये, ताकि हमारी अध्यात्म की जड़ें मज़बूत होती रहें। हमारी अिस बाह्य कताअी पीछे ये सब बातें भरी हैं, अिसका भान नित्य रहना ज़रूरी है और हमारी सत्य अेवं प्रेम की अुपासना कभी खंडित न हो अिसके लिअे सतत जागरुकता आवश्यक है।

अखिल भारत कताअी-दंगल

अखिल भारत कताअी-दंगल

खादी में नये विचार की प्राणप्रतिष्ठा के साथ साथ अुस कला को पुनर्जीवित करने के लिअे जो कोशिशें की गयीं, अुनमें कताअी व अुससे जुड़ी हुअीं दूसरी प्रक्रियाओं के दंगल की भी अेक कोशिश थी। अैसे अखिल भारत-दंगलों का सिलसिला खादी-आंदोलन के बाद कुछ अरसे तक चला था, मगर अिधर कुछ वर्षों से वह बंद हो गया है।

कताअी और दूसरी खादी-प्रक्रियाओं में हाथ की वह सफाअी, और कारीगरी में अुत्पादन की वह गति, अेक कहानी-सी रह गयी है, जो कि कुछ वर्षों पहले खादी-काम का आरंभ करनेवालों ने अिस अुद्योग की अंतिम हाल्त में भी अपनी आँखों देखी थी। हम मानते हैं कि खादी-अुद्योग में फिर से जान डालने का काम हमने किया, लेकिन हाथ की विशेष शक्ति और गति तक पहुँचने का विश्वास आज लुप्त हो रहा है। प्रत्यक्ष दर्शन के बिना वह लुप्त होना स्वाभाविक ही है। कुछ दिन बाद तो हाथों की अिस रफ्तार की कहानी की सचाअी परसे भी विश्वास अुठ जाना संभव है। आये हुअे यंत्र-युग ने हाथों को तो कमज़ोर बनाया, पर अुनकी शक्ति की कल्पना को भी पंगु कर दिया है। खादी और ग्रामोद्योगों के विकास के लिअे यह पंगुता बड़ा खतरा है।

देश के कोने-कोने से हाथों की अुस पुरानी-शक्ति को ढूंढ़ कर, जहाँ कहीं अैसी नयी शक्ति पनप रही हो अुन्हें प्रोत्साहन देकर, अुसके दर्शन करना और कराना हमारे आयोजनों में और अपने कार्यक्रमों में विश्वास बढ़ानेवाला और बल देनेवाला साबित होगा। यह काम अिन प्रक्रियाओं के निर्दोष दंगलों से हो सकता है। अिस लिअे चरखा-संघ ने महसूस किया है कि खादी-प्रक्रियाओं के दंगल का सिलसिला जारी किया जाय। अैसे अखिल भारतीय दंगलों का अच्छा मौका आगामी ६ से १३ अप्रैल तक सर्वोदय–संमेलन के वक्तपर है और मेले के प्रबंधकों की संमति मिले तो दंगलों का आयोजन करने का संघ ने ठहराया है।

तेज कताअी, संयुक्त कताअी, अटूट कताअी, महीन कताअी, धुनाअी, तुनाअी, बुनाअी आदि अलग अलग प्रक्रियाओं के दंगलों की योजना बनायी गयी है और अिनके तरीके और नियम बनाने का काम भी अेक समिति के ज़रिये बनाना शुरू हो गया है। हर प्रकार के दंगल में प्रवेश अुन्हीं को मिलेगा जो अेक मुकर्रर मापदंड को पार कर चुका हो। अिनामों का आयोजन भी रहेगा। अिस योजना का अेक पत्रक तैयार हो रहा है। अगले मास वह चरखा संघ, प्रधान कार्यालय, सेवाग्राम से, ४ आने के पोस्ट के टिकट भेजने से मिल सकेगा।

आशा है कि खादी-प्रेमी अपने यहाँ के दंगल में शरीक होने लायक व्यक्तियों तक यह जानकारी पहुँचाकर और अुन्हें प्रोत्साहन देकर अिस काम में हमारी मदत करेंगे।

—कृष्णदास गांधी,
मंत्री, अखिल भारत चरखा संघ, सेवाग्राम

सवरा-जाति के बीच

[वल्लभस्वामी]

अुनकी संस्कृति

अुत्कल के दक्षिण सिरे का, आंध्र से लगा हुआ, कोरापुर नाम का ज़िला है। विस्तार में वह अुत्कल के सब ज़िलों में बड़ा है। ज़िले में वन-विभाग काफ़ी बड़ा है। 'सवरा' अिसी वन-विभाग में रहते हैं। वे वन्य याने जंगली गिने जाते हैं। लेकिन संस्कृति के लिहाज से अुन्हें वन्य याने जंगली मानने का मुझे कोअी कारण नज़र नहीं आया। बाह्य-सफाअी का भान अुनमें ठीक ठीक है, यद्यपि मल-मूत्र-सफाअी के बारे में सभ्य गिने जानेवाले अन्य लोगों की भाँति ही अुनकी स्थिति है। पीने का पानी खूब साफ सुथरे बरतनों में और कुछ अूँची जगह पर रखा हुआ ही अुनके यहां आप पायेंगे। अुसमें से हाथ डुबोकर वे पानी नहीं निकालेंगे। पीने का पानी खास स्थान पर से ही लाते हैं और अिसके लिअे कभी तो अुन्हें अेक अेक मील तक जाना पड़ता है। पीने के पानी के बारे में यह सावधानी संक्रामक रोगों से बचने का अेक सफल साधन है। शायद अैसे अनुभवों से यह आदत हो गयी हो। विवाह आदि प्रसंगों में जो गीत गाये जाते हैं, अुनमें से अेकाध-दूसरा सुनने को मिला। अुसका भाव अीश्वर-स्तुति-पर था। बहनों के नाम अनुसूया, कमला आदि पाये। गांव में घूमते घूमते अेक घर में गये। घर की बहन ने अुसी दिन ३-४ मील की दूरी पर के हाट से लाये हुअे दो संतरे स्वागत के रूप में दिये। अुत्कल में संतरे कसरत से नहीं होते, अिसलिअे महंगे भी होते हैं। बहनों ने बच्चों के लिये संतरे खरीदे होंगे और मेरे साथ तो अपने लिअे ज़रूरी संतरे थे ही, अिसलिअे मैंने बहुत कोशिश की कि मुझे दिये हुअे संतरे वह बहन वापस ले। लेकिन अुसने नहीं माना। जानकारी के लिअे भाव पूछने के बावजूद, अुसने भाव भी नहीं बताया। यह है अुनकी संस्कृति प्रकट करनेवाला अेक प्रसंग।

सवरा शब्द संस्कृत 'शबर' पर से आया हुआ दीखता है। शबर का अेक अर्थ है, भील, याने जंगल में रहनेवाली अेक जाति। 'शबरी' अिसी जाति की होगी। अिस विभाग में सवराओं की आबादी करीब तीन लाख होगी अैसा मालूम हुआ। आबादी के मुख्य घटक वे ही हैं। अिस तरह अुनका यहां सघन क्षेत्र (काँपॅक्ट अेरिया) है। अन्य वन्य जातियों में कंध, पान आदि हैं। पान हरिजन हैं और बुनाअी अुनका पेशा गिना जाता है। सवराओं की अपनी खुद की बोली है, फिर भी वे अुड़िया समझते हैं, बोल लेते हैं।

प्रकृति का परस

नवंबर '४९ में अुत्कल के कुछ रचना-कार्य-केंद्र देखने को मिले। अुनमें से सवराओं में काम करने के लिअे, कुजेंद्री मुख्य केंद्र है। कलकत्ता मद्रास-लाअीन पर के नौपाड़ा जंक्शन से निकलने वाली छोटी लाअीन का करीब ५५ मील पर, गुणपुर आखिरी स्टेशन है। गुणपुर से आगे ७ मील पर कुजेंद्री है। पैदल, बैलगाड़ी या टांगे से जाना पड़ता है। नौपाड़ा से सफर शुरू होते ही

हम अेक तरह से वन-विभाग में दाखिल हो जाते हैं। यह वन-विभाग दिल को दहलानेवाला नहीं, बहलानेवाला है, क्यों कि दूर दूर तक चारों ओर की पहाड़ियों के बीच के विशाल क्षेत्र में जंगल के कोअी खास चिह्न नहीं हैं। वहां तो शबरी-से सीधे सादे सवराओं ने अपने समान ही सीधे-सादे औज़ारों से और बैल-भैंसों की मदद से जंगल में मंगल बनाया है। बैल अितने सीधे हैं कि और प्रांतों के बैलों की नाक में दीखनेवाली 'नथनी' यहाँ नहीं भी होती है। धान की पुख्ता और पक्व फसलें अुन दिनों शस्यश्यामला और सुवर्ण-भूमि का नाम सार्थक कर रही थीं। माता वंशधारा, वंशीधर की तरह टेढ़ी-तिरछी खेलती हुअी, बीच बीच में दरसन देती बहती जाती थी। चारों ओर की पहाड़ियां, कछुअे की चाल चलने वाली गाड़ी में बैठे हम बच्चों का, कभी पास से तो कभी दूर से, कुतुहल-पूर्वक और मूक स्वागत कर रही थी। मानो माता-पिता अपने रेंगते बच्चे का कौतुक कर रहे हों।

आर्थिक व सामाजिक परिस्थिति

अिन भोले-भाले सवराओं पर बेपारी और साहुकारों ने अपने पाश कब के डाल रखे हैं। और अिस पाश में से बड़ा पाँसा शराब का होता है, यह जानकर आधुनिक सभ्यता के [illegible]मी भी लज्जित होंगे। शराब के सिवा फॅशन तथा यंत्रोद्योगीय चीज़ों का आक्रमण बढ़ ही रहा था, लेकिन देस के १९३० के आंदोलन से 'सवरा' भी अछूते न रहे। शराब छोड़ने की लहर अुनमें दौड़ आयी, अस्मिता का अुन्हें भान हुआ। ग्रामोद्योगों के बारे में पिछड़ेपन के बजाय प्रतिष्ठा की भावना जगी। १९४२ तक जागृति काफी बढ़ी। अिसलिअे सरकार ने दमन भी कड़ा किया। ५० से ६० आदमी गोली के शिकार बने। स्वतंत्रता के बाद सवराओं को बड़ी आशा थी कि साहुकारों के घरों में गयी हुअी अुनकी ज़मीनें तुरंत वापिस मिलेंगी। लेकिन अितने जल्दी वह न होने से अुनमें कुछ अनुत्साह आया है, अैसा अुनके बीच ८-१० साल से काम करनेवाले, गांधी-सेवा-संघ के सदस्य, भाअी विश्वनाथ पटनाअिक ने बताया। अिस ज़मीन के सवाल को लेकर, कअी सालों से सवराओं में असंतोष चला आया है और दो अेक साल पहले साहुकारों के खिलाफ हिंसात्मक कारवाअी करने की हवा भी अुनमें बह रही थी। लेकिन विश्वनाथजी अपनी सेवा की ताक़त से अुसे रोक पाये।

स्वयंपूर्ण जीवन की झाँकी

कुजेंद्री देखने तक मुझे अैसा खयाल भी नहीं था कि जीवन की ज़रूरतों में काफी हद तक अैसे भी स्वयंपूर्ण क्षेत्र पड़े हैं। सवरा खेती तो करते ही हैं। खेती में होने वाली कपास में से कपड़े के लिअे ज़रूरी कपास रख लेते हैं। सूत घर-घर में कतता है और 'पान' (हरिजन बुनकर) से बुनवा लिया जाता है। अब सेवकों ने सबको बुनकाम सिखाना भी शुरू किया है। कअी देहातों में, मोहल्ले-मोहल्ले में अेकाध करघा लगा हुआ है। अपनी अपनी सुविधा के अनुसार सवरा अपना कपड़ा बुन लेने लगे हैं। खाने का तेल सादी तरकीब और सादे औज़ारों से घर-घर निकाल लेते हैं। मामूली बढ़अी-काम—छोटीसी झोपड़ी, चारपाअी आदिका—वे खुद कर लेते हैं। जूते का अुपयोग कोअी भी नहीं करते हैं, चाहे काम जंगल में और कांटे का क्यों न हो। अुनकी झोपड़ियाँ सौ फ़ी सदी स्वदेशी होती हैं। मुझे याद है, कअी साल पहले विनोबाजी ने कहा था कि अैसी झोपड़ी बना दो, जिसमें लोहे का अेक कीला भी न लगा हो। यह सुनकर मैं ताज्जुब करता

था कि यह होना बहुत कठिन है, अेक तरह की यह धुन है, अैसा मुझे लगा था, पर यहां मैंने यह प्रत्यक्ष देखा।

अब अिस स्वयंपूर्णता पर आक्रमण हो रहा है। कावड़ में–जो कि यहां का बोझा ढोने का आसान साधन है–नमक, भुनी मूंगफली–जिसे अिधर चीना बादाम कहते हैं–सिगरेट, कंघी व शीशा, चाप की पुड़िया आदि रखकर फेरीवाले झोपड़े-झोपड़े तक पहुंचते हैं। जिज्ञासा से भाव से पूछा तो मालूम हुआ कि अेक तोला कपास के बदले में दो तोला नमक या अुतनी ही भुनी मूंगफली, छिलके के साथ मिलती है। आक्रमण के बावजूद, अिस स्वयंपूर्णता पर, सवराओं में संतोष और अेक तरह की प्रतिष्ठा का भाव है, जो खासकर बापूजी के आंदोलन के कारण है।

कुजेंद्री का यह क्षेत्र देखते समय और आज भी, मेरे मन में बार बार विचार आता है कि क्या रचनात्मक कार्य के लिअे यह अच्छा क्षेत्र नहीं है? ग्रामोद्योगों पर खड़ा जीवन कहां तक शक्य और सुखी हो सकता है अिसका वादविवाद करने के बजाय, यहां अेक खासा नमूना कम श्रम में पेश हो सकता है। ग्रामोद्योगी-जीवन के फैलाव में मुख्य दिक्कत है–सभ्य लोगों को पड़ी हुअी आरामतलबी आदतों की। यहां तो वे लोग कड़े परिश्रम का जीवन बिता ही रहे हैं। और ग्रामोद्योगी-जीवन की बात करनेवालों के लिअे सवराओंके दिलों में श्रद्धा है, जो कि काम के लिअे बहुत बड़ी पूंजी है। साथ ही ग्रामोद्योगों से जीवन का दर्जा घटने का जो डर आरामतलबों को अनुभव कर देखने के पहले ही निरुत्साहित कर देता है, वह भी यहां नहीं है, क्योंकि सुधरे हुअे ग्रामोद्योगी साधनों और सहकार-प्रवृत्ति से बढ़ावा ही आनेवाला है।

कुजेंद्री जैसे क्षेत्र में काम करनेवालों को अेक दिक्कत का सामना करना पड़ेगा। वह है मलेरिया। श्री विश्वनाथजी को भी मलेरिया सताता रहता है, लेकिन अिसमें से भी हमें रास्ता तो निकालना ही होगा। निकल भी सकता भी है। और आखिर दिक्कतों की मुकाबली करने में तो मौज़ आती है न!

घर-घर में ताड़-गुड़

(ले. गंगाधर पांढरे, ताड़गुड़-संघटक, संयुक्तप्रांत)

संसार में ताड़ की जातियां दो हज़ार के अूपर हैं अैसा माना जाता है। अुनमें से नौ जातियां शक्कर बनाने के काम में, अभी तक छोटे तथा बड़े प्रमाण में, लायी गयी हैं। अुनकी नामावली निम्न-लिखित है:

१. खजूर, २. ताड़, ३. नारियल, ४. बुरमद, ५. मेपल, ६. नीपा पाम, ७. अरेंगा सक्करी फेरा, ८. तालिपाट पाम, ९. कोकिटो पाम।

संयुक्त प्रांत में

आज के हिसाब से हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष में ५ करोड़ शक्कर देनेवाले ताड़ हैं। अुनमें से १ लाख ताड़ और ५० लाख खजूरें संयुक्त प्रांत में हैं।

अिस प्रांत के अभी तक ५१ ज़िले हुअे हैं। ४८ ज़िलों में १०२३८८ ग्राम हैं। अिनमें से १७५४० ग्रामों में खजूर तथा ताड़ के

पेड़ हैं। अिसके अलावा जो नये ज़िले हमारे प्रांत में विलीन हो रहे हैं, अुनके बारे में यहां जानकारी नहीं दी है।

मेरे १२ साल के अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूं कि आजकल हम जिस ढंग से ताड़-गुड़ योजना का संचालन कर रहे हैं, अुस ढंग से योजना चलाने में आसानी से यश नहीं मिल सकता। अिसके निम्न कारण हैं :

१. आज प्रांत में जो ताड़ या खजूर के पेड़ हैं वे अिधर-अुधर जंगल में फैले हुअे हैं। या ग्रामों से दूर अंतर पर खड़े हैं।

२. रस (नीरा) इकट्ठा करने में बहुत समय लग जाता है। अिससे कारीगर हमेशा तंग रहते हैं।

३. गुड़ बनाने की भट्टी आदि जंगलों के पास होती है अिसलिअे कारीगर को झोपड़ी में, जंगल में रहना पड़ता है। अुसे या तो स्वयम् रोटी पकानी पड़ती है या घर से खाना लाना पड़ता है तथा मंगाना पड़ता है।

४. अितने पर भी बहुत से कारीगर ताड़-गुड़ बनाने के लिअे तैयार होते हैं, क्यों कि अुनके पास रोज़गार का दूसरा ज़रिया नहीं है। लेकिन अन्य अच्छा कार्य मिलने पर वे ताड़-गुड़ अुद्योग को छोड़ देंगे।

५. आदमी पैसे के लिअे बहुत सी जोखिम लेने के लिअे तैयार होते हैं, लेकिन ताड़-गुड़ में आज जीवन-निर्वाह के सिवा ज्यादह कमाअी करने के लिअे गुंजाअिश नहीं है, अिसलिअे भी कारीगरों के कदम अिस अुद्योग से पीछे हटते हैं।

अब दूसरा चित्र देखिये

१. बंगाल में करीब करीब हर ग्राम में खजूर, ताड़, नारियल तथा सुपारी के पेड़ हैं।

२. केवल ग्राम के निकट ही नहीं, बल्कि प्रत्येक घर के आंगन में तथा आंगन के कोट पर वे हैं।

३. प्रथम चित्र में, जो १ से ३ और ५ अंकों में दिक्कतें बतायीं, वे बंगाल में नहीं हैं।

४. कारीगर के बच्चे आसानी से रस नीचे लाते हैं और बच्चे की मां रोटी के जैसा गुड़ भी पका लेती है।

५. बंगाली लोगों के लिअे रोटी पकाने का जो अर्थशास्त्र है, वही ताड़-गुड़ के लिअे है और होना भी यही चाहिअे। अिसी व्यवस्था में सर्वोदय है।

हमारा अगला कदम

अब हमको अपनी कार्य-प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर देना चाहिये।

कुछ सुधार

१. जिन ग्रामों में कम से कम १०० ताड़ या १००० खजूरें हैं, अुसी ग्राम में केन्द्र खोलना चाहिये।

२. जिन लोगों के पास थोड़ी खेती है, अैसे लोगों को ताड़-गुड़ की तालीम प्रदान करनी चाहिये, क्यों कि अैसे लोग खेती करने की ग़रज़ से ग्राम छोड़कर शहर में नहीं जाते।

३. बिलकुल खेती-हीन लोगों को तालीम देना भी अुचित है, लेकिन अैसे लोग काम न मिलने पर शहर में चले जाते हैं। आज ताड़-गुड़-अुद्योग लोगों को १२ महीने का काम देने लायक समर्थ नहीं हुआ है। अिसलिअे ताड़-गुड़ को सूरज मानकर अन्य ग्रामोद्योगों के ज़रिये कारीगरों के लिअे १२ महीने का काम ग्रामों में हमें तैयार करना है।

४. पढ़े-लिखे खुशहाल लोगों को भी ताड़ों से रस निकालना और गुड़ बनाना सिखाना चाहिये। अिनको गाय के धारोष्ण-दूध जैसी नीरा अुनके आंगन में मिला करेगी।

५. ताड़-गुड़-अुद्योग का जितना विकेन्द्रीकरण हो सके, अुतना करना चाहिये। अिसी

में अधिक से अधिक सफलता है। लोगों को अिस अुद्योग का बोझ न महसूस हो और आज कल के परिवर्तनीय अर्थशास्त्रों से अिस अुद्योग का बचाव हो।

ताड़ों की बोआअी

१. प्रत्येक ग्राम में, घरों के आंगनों में खजूर तथा ताड़ के पेड़ बोने चाहिये।

२. अिस कार्यक्रम को विस्तृत पैमाने पर अंमल में लाने के लिअे अेजन्सियां या ग्राम-सक्रिय मंडलियां स्थापित हों। मेरी दृष्टि से ग्राम-पंचायतें यह कार्य भली भाँति कर सकती हैं। और १५ अगस्त की तिथि भी मौसम तथा अैतिहासिक दृष्टि से योग्य है, जिस तिथि से ताड़-वृक्षारोपण का प्रारंभ हो।

३. ताड़ों के लिअे किस प्रकार की ज़मीन अुत्तम और किस प्रकार का खाद वे चाहते हैं, अिसकी भी जानकारी लोगों के पास पहुंचनी चाहिअे।

४. प्रत्येक प्रांत में ताड़ के फल तथा बीज संग्रह करने का कार्यक्रम भी ज़ोरों से हाथ में लेना चाहिये।

५. प्रत्येक प्रान्त में सरकार की ओर से नमूनेदार शक्कर के ताड़ों का बाग स्थापित होना चाहिये। अुसमें संसार के अन्य देशों से शक्कर के ताड़ लाकर बोने चाहिये। अुनकी परवरीश करनी चाहिये।

मैंने हिमालय के नैनिताल से लेकर मद्रास तक और डायमंड हार्बरसे द्वारका तक ताड़-गुड़ योजना के संबंध में प्रवास किया, हालांकि अिन समस्त प्रदेशों में ज़मीन तथा आब-हवा भिन्न भिन्न हैं, फिर भी कम-अधिक मात्रा में खजूर तथा ताड़ के पेड़ पाये गये हैं। ये पेड़ स्वयम् अुगे हैं। हम अिन ताड़ों को गुड़ तथा शक्कर की बंक कहते हैं, क्यों कि अतिवृष्टि और अनावृष्टि, दोनों में ताड़ नीरा देते हैं। पेड़ जितना ज़मीन के अूपर अूँचा होता है, प्रायः अुतनी ही गहरी अुसकी जड़ें ज़मीन के अंदर क़रीब क़रीब सरल रेखा में जाती हैं, जिससे पेड़ को हमेशा पानी मिलता ही रहता हैं। अतिवृष्टि में ये पेड़ सड़ते नहीं।

खजूर के फल मअी तथा जून में पकते हैं। वर्षा से ज़मीन शीत होने के बाद खजूर की गुठलियां लगाने से पौधे तैयार हो जाते हैं, अेक ही वर्षाऋतु में पेड़ जम जाते हैं। फिर पानी देने की ज़रूरत नहीं रहती है। ताड़ के फल में क़रीब क़रीब तीन गुठलियाँ होती हैं। आम का पौधा जिस तरह तैयार होता है अुसी तरह यह ताड़-फल से निकली हुअी गुठली पौधा देती है। अिस पेड़ को गर्मियों में साधारणतः अेक साल तक पानी देने की ज़रूरत है। महाराष्ट्र में तुलसी-पूजा चलती है। हर रोज़ तुलसी को सींचते हैं। अुसी प्रकार ताड़ों को थोड़ा सींचने से काम चलेगा। दूसरी बात यह है कि महाराष्ट्र में आंगन में गोबर-पानी का छिड़काव करने का रिवाज़ है। अिस छिड़काव के रूप में भी हमारे ताड़ों को पानी मिल जायगा।

प्रत्येक प्रांत के बोटेनिकल अेक्स्पर्ट से ताड़ों के बारे में जानकारी प्राप्त हो सकती है। अिस बात पर प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार को ज़ोर देना चाहिये।

स्वावलंबी तथा स्वयम्पूर्ण ग्राम

गुड़ तथा शक्कर के बारे में हमारे ग्राम पूर्ण रूप से स्वावलंबी तथा स्वयम्पूर्ण हो सकते हैं, यह बात सिद्ध है, क्योंकि बंगाल के देहातों में आज भी पर्याप्त मात्रा में गुड़ बन जाता है।

यही बात हमको युक्तप्रांत के ग्रामों को लागू करना है। आज हमारे प्रांत के १७५४० ग्रामों में ताड़ हैं, यह बात हम ऊपर लिख चुके हैं। अिन ग्रामों को हम स्वावलंबी तथा स्वयम्-पूर्ण, ताड़-गुड़ तथा शक्कर के बारे में, कर सकते हैं। साथ साथ बचे हुअे ८४८४८ ग्रामों में ताड़ तथा खजूर के पेड़ लगाने का कार्यक्रम ज़ोरों से चला सकते हैं। अिसमें खर्च बिलकुल कम याने सहज होने जैसा है।

प्रमाण

अ. १. ताड़ अपनी अुम्र के १५ वें वर्ष से रस देता है।

२. वह फिर अंदाज़ से बराबर ५० साल तक नीरा देगा।

३. वह अेक मौसम में ३० सेर से १ मन तक गुड़ देते रहेगा।

४. अेक कुटुंब के ५ आदमी मानना ठीक होगा।

५. अेक व्यक्ति को वार्षिक २५ सेर गुड़ समतोल आहार में चाहिये।

६. पांच व्यक्ति को १२५ सेर गुड़ की आवश्यकता होगी। अिसलिअे ५ ताड़ लगाने से प्रत्येक घर की गुड़ तथा शक्कर की आवश्यकता पूरी हो सकती है।

ब. १. खजुर का पेड़ अपनी अुमर के ८ वें वर्ष से रस देता है।

२. वह फिर बंगाल-छेदन पद्धति से कम से कम २५ साल तक रस देगा।

३. वह अेक मौसम में १० से १५ सेर तक गुड़ देता है।

अुपरोक्त हिसाब से अेक घर के आंगन में १५ खजूर के पेड़ लगाने से १ कुटुंब की ताड़-गुड़ तथा शक्कर की आवश्यकता पूरी हो सकती है।

यह सब करने में आठ से पंद्रह वर्ष लग जाअेंगे। मनुष्य-स्वभाव आज यंत्र-वत् हो गया है, अिसलिअे संभव है, लोगों को यह बातें पसंद न आयें। लेकिन बढ़ती हुअी जन-संख्या को देखते हुअे और यह सत्य भी देखते हुअे कि दुनिया की ज़मीन में तो अिज़ाफ़ा होनेवाला नहीं है, शायद अुपरोक्त सुझावों पर अमल करना ही लाभदायी होगा।

शक्कर के ताड़ शांतिदूत हैं। दुनिया में सुख-शांति बढ़ाने के लिअे, आअिये, हम घर घर में अिन शांतिदूतों का अधिष्ठान करें।

ग्रामोद्योग और सरकार*

[जीवतराम कृपालानी]

स्वावलंबन का अर्थ

ग्रामोद्योग में दो मुख्य बातें हैं: (१) घरेलू ज़रूरतों की पूर्ति और (२) अतिरिक्त अुत्पादन का वितरण। ज़माने से ग्रामोद्योग का काम अिस प्रकार होता आया है। देहाती अपनी ज़रूरत के लिअे चीज़ें बनाता था और जितना कुछ अधिक बना लेता था, अुसे बाज़ार में बेचकर अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता था। कताअी का काम भी पहले अिसी ख्याल से होता था। घर के कपड़ों की ज़रूरत पूरी हो जाने के बाद अन्य अुपयोग की चीज़ें खरीदने के लिअे अतिरिक्त कपड़ा बाज़ार में बेचा जाता था। घर की बहनें प्राय: अितना सूत कात लेती थीं कि घर का सारा कपड़ा बनाने के बाद भी अितना सूत बच जाता था कि अुसे बेचकर नमक-मिर्च-मसाले आदि का खर्चा अुससे निकल जाता था। स्वावलंबन का अर्थ यह नहीं कि हरअेक घर या हरअेक देहात सब दृष्टि से स्वयंपूर्ण हो। अैसा होना भी ग़लत है। अिससे वह अेकाकी (आयसोलेटेड़) हो जावेगा। स्वावलंबन के नाम से यदि हम दूसरों के संबंध तोड़ देते हैं तो वह खराब ही समझना चाहिये। अुससे प्रगति रुक जावेगी, अंत में वह देहात ही मिट जायगा। दुनिया से हमें अपना संबंध कायम रखना है, वह बढ़ाना है। अफ्रिका में या दक्षिण अमरीका में पहले अच्छी बस्ती थी। वहां का समाज अुन्नतिशील था। लेकिन अन्य प्रदेशों से अुनका संबंध न होने के कारण वहां की बस्ती बिखरने लगी, छोटी-छोटी टोलियों में समाज बँट गया और अंत में वह सब टोलियाँ जंगली बन गयीं।

संगति की आवश्यकता

संघटित आर्थिक जीवन हमें एक दूसरे से मिलाने का काम करता है, एकाकीपन से बचाता है। अिसलिअे हमें हमेशा अेक दूसरे से संबंध बनाये रखने की ज़रूरत है। लेकिन यह संबंध अिस प्रकार का न हो कि अुससे हमें नुकसान पहुंचे। श्रम-विभाजन की समाज में ज़रूरत तो है परंतु वह श्रम-विभाजन अैसा न हो कि हम चीज़ें बनायें और वह किसलिये बनाते हैं, अिसका हमें पता भी न हो। आचार-धर्म हमें सिखाता है कि आत्यंतिकता छोड़ो और बीच का मार्ग लो। भगवान् बुद्ध ने हमें यही बताया। श्री गीताजी ने भी यही सिखाया है। समाज-शरीर के सारे अवयवों में सितार के तारों के जैसी संगति होनी चाहिये, तभी अुसमें से कर्णमधुर ध्वनि निकल सकेगी। तारों का खिंचाव सितार में जिस प्रकार रहता है, समाज में भी अुतना ही खिंचाव पर्याप्त माना जाय।

बापू को अपने जीवन-काल में पश्चिमी संस्कृति से झगड़ना पड़ा था। आज अिस संस्कृति का प्रभाव हमारे समाजपर काफ़ी पड़ा हुआ है। बापू अिस प्रभाव को दूर करना चाहते थे। बेंत में लचीलापन होता है। समाज भी अुसी प्रकार अपने को मरोड़कर अिस नयी दिशा की ओर झुकता जा रहा है। अिस झुकाव को रोककर बापू अुसे सीधा बनाना चाहते थे।

---

* सेवापुरी-संमेलन में आचार्य कृपालानीजी का भाषण, ता. १६-११-४९।

अिस बिगड़ी हुअी चीज़ को बापू दुरुस्त करना चाहते थे। समाज को बापू ने दवा दी। बीमारों को दवा की ज़रूरत होती है, दवा खानी पड़ती है, लेकिन वह भोजन नहीं बन सकती। दवा कोअी स्वाभाविक आहार नहीं है। यह हमें ध्यान में रखना चाहिये कि तन्दुरुस्ती आने के बाद भोजन ही करना होता है। दवा की ज़रूरत तब नहीं रहती। ग्रामोद्योग केवल स्वावलंबन के वास्ते नहीं है। हमें समाज की आवश्यकताओं से डरना नहीं चाहिये। हम यदि हररोज़ नापतौल कर ज़रूरत के मुताबिक ही खाना और कपड़ा समाज को देते रहें, तो वह समाज ज़िंदा नहीं रह सकता।

मैं समझता हूं कि मेरी बात आप लोगों पर स्पष्ट हो चुकी होगी। मेरी भाषा ठीक नहीं है। यद्यपि मैं हिंदी में बोल रहा हूं, परंतु मेरा दिमाग़ अंग्रेज़ी में ही विचार करता है। मुझे हमेशा तर्जुमा करना पड़ता है। यही दिक्कत है।

कॉटेज और व्हिलेज-अिंडस्ट्रीज़ का सरल अर्थ है संस्कृति बनाना। अिसलिअे कूपमंडक वृत्ति रखने से हमारा काम नहीं चलेगा। ग्रामोद्योग दोनों दृष्टि से चलना चाहिये—(१) निजी अुपयोग के लिअे और (२) बाज़ार में बेचने के लिअे भी। आप अनजान में ही क्यों न हो, अुसी ओर जा रहे हैं; यह देखकर मुझे समाधान होता है। मेरा कहना है कि मार्केट के वास्ते भी खादी पैदा करनी होगी। हमारी स्वावलंबन की भाषा में, "मार्केट के लिअे भी" का अर्थ हम अभिप्रेत रखते हैं। यह एक समझदारी की बात समझनी चाहिये। हम जो कुछ करना चाहें, वह सोच समझ कर करें, अनजान से होनेवाली बात कभी धोखा भी दे सकती है।

खादी और बापू के प्रयत्न

खादी को बाज़ार में चलने देने के लिअे बापू ने क्या किया, यह हमें समझ लेना चाहिये। खरीद-विक्री का अेक स्वाभाविक नियम है कि सस्ती जगह से खरीदना और महंगी जगह बेचना। बापू ने अिस नियम को पूरा समझ लिया था और काम भी अिसीके अनुसार किया। खादी महंगी थी, भद्दी थी, मोटी थी, जल्दी फटती थी। अैसे दोष खादी में थे। अैसी परिस्थिति में खादी को बचाने के लिअे महात्मा ने क्या किया, यह जान लेना ज़रूरी है। सबसे पहले अुन्होंने समाज में खादी को सन्माननीय बनाया। अुसे सभ्यों का पोषाक बनाया। पं. मोतीलाल, दास जैसे बड़े आदमियों को खादी की पोषाक पहनायी। लेकिन खादी की यह मान्यता जा रही है। यदि यह मान्यता चली जाती है तो खादी को बचाना मुश्किल होगा। क्यों कि यह स्थिति व्यापार के स्वाभाविक नियमों के ख़िलाफ़ है।

खादी को बचाने के लिअे बापू ने अुसे अैसा मार्केट मिला दिया, जिसमें किसी प्रकार की होड़ नहीं रही। खादी का मार्केट ही स्वतंत्र हो गया। हाथी के साथ छोटा बच्चा किस प्रकार लड़ सकता है? और यदि अुसे लड़ना ही है तो बच्चे को संरक्षण देना हमारा कर्तव्य हो जाता है। बापू ने अैसा ही किया। पैसे का संरक्षण काफ़ी नहीं होता। और वह तरीका भी ठीक नहीं। असली संरक्षण तो सुरक्षित मार्केट ही है। बापू ने कांग्रेस में खादी की पोषाक वाला प्रस्ताव पास करा के कांग्रेस-प्रेमियों का अेक विशाल मार्केट खादी के लिअे खोल दिया। जिस किसी को देशभक्ति का टीका लगाना हो, अुसे खादी पहननी पड़ेगी, अैसी हवा अुन्होंने पैदा की। यह काम बापू ने अितना मज़बूत कर दिया

कि समाजवादी भी खादी पहनने लगे और आज के सरकार के प्रमुख नेता भी।

आगे चलकर खादी के मार्केट में चोर आने लग गये। निजी फायदे के लिअे खादी पैदा करके पैसा अिकट्ठा करना अुन्होंने शुरू किया। अिन लोगों से भी बापू ने खादी को अज़ीब तरकीब से बचाया। अुन्होंने खादी-व्यवसाय में से मुनाफ़ाख़ोरी ही अुड़ा दी और प्रमाणित खादी ही पहननी चाहिये अैसा एक प्रस्ताव कांग्रेस में पास करा लिया। लोग समझते हैं कि सत्य-अहिंसा तो बेवकूफ़ों का शस्त्र है। खादी के मार्केट में चोर बाज़ारवाले आये हैं, यह ज्ञात होने पर बापू ने अुनके सामने घुटनोंपर खड़े होकर या हाथ जोड़कर अैसा नहीं कहा कि "बाबा, कालाबाज़ार मत करो, मैं महात्मा तुम्हें कह रहा हूं, मेरा मान लो, मेरी यह आपके पास अर्ज़ी है।" बापू ने तो कांग्रेस के ज़रिये प्रस्ताव कराके ही अिन चोरों को दबा दिया। यही महात्मा की असली पहचान है। महात्मा तो केवल सुधारक का काम करता था, लेकिन वह कांग्रेस का गव्हर्नर था।

खादी को व्यापक बनाने की ज़रूरत थी। मिल और खादी साथ साथ रहकर बढ़ नहीं सकती थी, अिसलिअे बापू ने मिलवालों को समझाने की कोशिश की और कहा—"खादी का काम चलने से तुम्हें बहुत फायदा हुआ है, स्वदेशी की भावना देश में बढ़ती गयी; तुम्हारा माल देश में ज्यादा बिकता रहा और तुम्हें करोड़ों रुपयों का फ़ायदा मिला, अब तुम खादी के लिअे अितना तो करो कि अपनी मिलों में १५ अंक के नीचे का सूत मत पैदा करो। नीचे का सारा अुत्पादन खादी के लिअे छोड़ दो लेकिन मिल वालों ने यह नहीं माना। आज यदि बापू होते तो खादी को बढ़ावा देने के लिअे क्या अुन्होंने अैसा ही कुछ कानून न बनवाया होता?

हम क्या कर रहे हैं?

आज हम क्या कर रहे हैं? हमारी सरकार क्या कर रही है? सरकार ने मुझे अेक कमिटी में ले लिया था। ग्रामोद्योग को पैसे की सहायता देने का अेक सुझाव अुस कमिटी में आया था। तो मैंने बताया—"आप ग्रामोद्योगों पर रहम करो और अुसे पैसे की मदद न दो। मदद देकर अपना पैसा भी ख़राब मत करो। यदि मदद देनी ही है तो अुसे संरक्षण दो। सुरक्षित मार्केट दो।"

आज आप देखते हैं कि देश में चीनी की हालत क्या है? चीनी के दाम अुतारना सरकार के लिअे कठिन नहीं था। "जावा की चीनी देश में आ सकती है," अैसी घोषणा-मात्र सरकार कर देती तो अंधेरे में छिपे सारे चीनी के बोरे देशभर में बाहर आ जाते। यह सारी मनोविज्ञान की बातें थीं। मेरी समझ में नहीं आता कि सरकार यह क्यों नहीं समझी?

थोड़े में मेरा कहना है कि खादी और ग्रामोद्योग को मार्केट दिया जाय। अैसा मार्केट दूसरे देशों में दिया जाता है। अमरीका अपने देश में दूसरे देश का माल नहीं आने देती। अमरीका तो धनी देश है लेकिन जापान का सस्ता माल यदि वे अंदर घुसने दें तो वहां के सुव्यवस्थित तथा सुसंघटित बड़े बड़े अुद्योग चौपट हो जाने की संभावना है। अिन धंधों को संरक्षण देना अमरीका का कर्तव्य है।

आज हमारे कुटि-अुद्योग मर रहे हैं। मुझे याद है, मद्रास प्रांत में पीतल के सुंदर लोटे-गिलास बनते थे। वे अितने सुंदर और सुडौल होते थे कि विदेशी लोग अुसे गुलदस्ते

के लिअे खरीद कर ले जाते थे। लेकिन आज हमारे लिअे कोअी महत्त्व ही नहीं रहा है। बनारस, मुरादाबाद का भी यही हाल है। परदेशी फॅक्टरी में बना स्टेनलेस स्टील का माल आज अुन सुंदर वस्तुओं की जगह ले रहा है। हमारा खादी का आग्रह भले ही छोड़ दो; लेकिन ये छोटे मोटे धंधे भी मर रहे हैं; क्या अिस ओर भी सरकार ध्यान नहीं दे सकती ?

यह सब बातें देखकर अेक बात स्पष्ट हो जाती है कि बड़े प्रयास के साथ खड़ा किया हमारा कोअी भी काम सरकार की नीति से खतम हो सकता है। हमें अिस बात पर गंभीरता से विचार करना होगा।

स्वावलंबन मे संकुचित दृष्टि न रखें।

आखिर में मैं अितना ही कहना चाहता हूं कि आप लोग स्वावलंबन में संकुचित दृष्टि न रखें। नपे–तुले कपड़ों का स्वावलंबन ज़िंदा स्वावलंबन नहीं हो सकता। अितिहास में अैसा कभी नहीं हुआ। आप अेक नया ही अध्याय लिखना चाहते हैं तो भले ही प्रयोग करो। लेकिन मैं आपको यह बता देना चाहता हूं कि आप अुसमें सफल नहीं हो सकेंगे।

नौकरी की मनोवृत्ति

मेरे बाप-दादा नौकरी करने वाले थे। वे अपना पेशा अच्छा जानते थे। जैसा राजा होता है, वैसी ही प्रजा और अुसके नौकर। मुसलमान राजा थे, तब सब लोग अुसी प्रकार का पहनावा करते थे। परदा भी अुन्हींसे हमने सीखा। अुसके बाद अंग्रेज़ आये। नौकरी पेशा लोगों ने तुरंत अपना पहनावा बदल दिया। पर व्यापारी और किसानों ने नहीं बदला। आज हमारा राज है, अैसा हम मानते हैं। यदि हम चाहते तो सारा नौकरवर्ग खादी की पोषाक में दिखाअी देता। परंतु बात कुछ अलग है। बाबूजी खादी पहनते हैं, लेकिन अुनके बच्चे नहीं। गादी–तकियों के गिलाफ़-मिल-कपड़े के चल जाते हैं। सरकार को जो पसंद होता है, है, नौकर–वर्ग चुपचाप करने लगता है। सरकार अगर लंगोट पहनने से खुश होती तो तमाम अूंचे ओहदेदारों से लेकर नीचे तक सब लोग लंगोट पहने ही नज़र आते। नौकरी मनोवृत्ति मैं जानता हूं, क्योंकि बदक़िस्मती से मैं भी अुसी जाति का हूं।

आज तो झंडे में भी खादी का आग्रह नहीं रहा। आज खादी को सन्मान का स्थान नहीं दिया जा रहा। हम तो उलटा ही देख रहे हैं। सुनने में आता है कि बम्बअी में खादी टोपी तो काले बाज़ार वाले को पहचानने की एक निशानी हो गयी है। दुःख इतना ही है कि क्या मैं अपना समय बरबाद कर के दुर्जनों को प्रतिष्ठा दिलाने के लिअे खादी का अुत्पादन कार्य कर रहा हूं?

जीवन का आविष्करण

[विनोबा]

वासना और जीवन

जीव का जीवन वासनाओं का अेक खेल है। वासना याने जीव का जीवत्व। अन्य जीवों की तरह मानव के भी जीवन में यही खेल चल रहा है। तटस्थता से देखें तब तो वह खेल है। लेकिन अुसमें जो फँसा हुआ है, वह तो अुसके कारण परेशान हो रहा है। अिसलिअे अनुभवी लोगों ने अंतिम ध्येय मान्य किया है—'वासनाओं से मुक्ति।'

वासना-प्रकार

लेकिन वासना रुलाती है तो हंसाती भी है। रुलानेवाली वासना मनुष्य को नहीं भाती, पर हँसानेवाली की अुसे चाह रहती है। लेकिन अुसकी भी अेक मर्यादा होती है। अुस मर्यादा के लाँघने पर वह भी दुखदायी हो जाती है। अिसलिअे बच्चे जब बहुत हँसने लगते हैं, तो माँ अिशारा करती है—"बहुत न हँसियो, बाद में कहीं रोना न पड़े।"

'वासना दुखदायी नहीं, सुखदायी चाहिये'—यह हुआ 'वासना–विवेक।' सुखदायी भी आवश्यकता से अधिक नहीं चाहिये, यह है 'वासना-नियमन।' वासना-मात्र से मुक्ति पाने को वासना-निरसन कह दीजिये।

वासना-निरसन

वासना-निरसन बहुत ही परली बात है—बहुत ही अूंची। अिस जीवन में शायद वह कभी अमल में आ ही न सके। लेकिन अिस जीवन में भी वह निरुपयोगी नहीं है। दिशा-दर्शक अचल सितारे की तरह वह अुपयोग में आ सकती है। अुस सितारे तक हमें आज या आगे कभी पहुंचना संभव न भी हो, लेकिन नैय्या हमारी, अुसीके कारण, सुरक्षित है।

वासना-विवेक

अुस अचल सितारे की दिशा में नित वासना-विवेक और वासना-नियमन करते रहना शिक्षण का काम है। समाज-शास्त्र अुसकी योजना बाहर से करता है, भीतर से वही काम धर्म करता है। आजकल कोअी कोअी धर्म के नाम से अुकतायेसे दीखते हैं। अुनकी सारी दारोमदार स्वभावतः फिर समाज-शास्त्र पर ही आ पड़ती है। बेचारा समाज-शास्त्र, अिसलिअे, बहुत ही तंग हो जाता है। अत्यधिक सँकरा समाज-शास्त्र तापदायी भी होता है। अुसमें से विद्रोही वृत्ति को बल मिलता है। अुसे दबाने के लिअे राज्य-सत्ता खड़ी होती है। धर्म गया कि राज्य आ धमका! फिर वह चाहे पूंजीपतियों का साम्राज्य हो, या किसान-मज़दूरों का अधिराज्य हो, या 'फ़ी सिर-राय-कूतने' वाला लोक-सत्ताक राज्य हो।

वासना-समाधान

बुरी वासना छोड़ें, भली ग्रहण करें। अुसे भी बेतहाशा नहीं बढ़ने देना है। अुसे हद में रखना है। और फिर अुसका किया क्या जाय? अुसकी की जाय पूर्ति। अिसे हम वासना-समाधान कहेंगे। यह सधे कैसे? मानव के सामने यह भी अेक पेचीदा सवाल है। अनेकविध वासनाओं के साथ मनुष्य में अेक जाड्य वासना रहती है। वासनाओं की वह प्रतिक्रिया ही है। भली-बुरी, मित-अमित सब वासनाअें अेक

ओर, और यह जाड्य-वासना दूसरी ओर; अैसी दोनों में खींचातानी चली है। वासना-निरसन की भूख मनुष्य को भीतर से रहती है। लेकिन देह-भाव से अलिप्त हुअे बिना वासना-निरसन सधने वाला नहीं है। वह तो परम पुरुषार्थ का काम है। अुस काम को करने का रौब यह जाड्य-वासना गाँठती रहती है। वासना-समाधान का निसर्गोत्पन्न सरल और सुलभतम साधन है-शरीर-परिश्रम। अुसे टालकर वासना-पूर्ति करने का तरीका जाड्य-वासना ढूंढ़ती रहती है। फिर 'वासना-परिमित रखने' की कल्पना छूट जाती है। भविष्य की सिद्धता वर्तमान में करने की वृत्ति जाग अुठती है और अुसमें से संचय-परायण अर्थ-शास्त्र निर्माण होता है। अिस पर अिलाज अेक ही है—वेदों की सिखावन :—अद्या, अद्या, श्वः श्वः'—आज का आज, कल का कल।' अिसे हम 'वासना-नियंत्रण' कहेंगे।

साम्ययोग

कुछ विचारी पुरुष स्वेच्छापूर्वक हमेशा ही यह वासना-नियंत्रण करते रहते हैं। और करोड़ों तो वह मजबूरन ही कर रहे हैं। सबको वह संतोषपूर्वक ही सधना चाहिये। अिसके लिअे आवश्यकता है, शरीरश्रम परानिष्ठा की, और साथही सबकी सबको फिक्र करानेवाली वृत्ति की। यही अेकमात्र अिलाज हो सकता है। गीता अिसे आत्मौपम्य या साम्ययोग कहती है। वही मानव-जीवन का आविष्करण है, क्यों कि अुसमें आज का वासना-समाधान और अंतिम वासना-निरसन, अिन दोनों के लिअे सहूलियत है।

साहित्य-संचय

मध्यम पींजन

(ले० मथुरादास पुरुषोत्तम, प्र० अ. भा. च. संघ, पृष्ठ १००, मूल्य-सवा रुपया)

श्री० मथुरादास भाअी की ग्यारह साल पहिले लिखी हुअी किताब का यह दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ है। अिस बीच खादी-विद्या में काफ़ी प्रगति हुअी है और कअी नये संशोधन हुअे हैं। नअी-तालीम का विचार भी अिसी ज़माने में प्रकट हुआ है जो हमें हर चीज़ को नये ढंग से सोचने के लिअे बाध्य करता है। अिन सब चीज़ों को ध्यान में रखकर पुस्तक में जो सुधार करने ज़रूरी थे, अुनका ख़याल अिस आवृत्ति में होना अनिवार्य था, और कुछ हुआ भी है। और अब यह पुस्तक अिस विषय का सांगोपांग ग्यान देनेवाली बन गयी है।

वस्त्र-स्वावलंबन खादी-विचार का मुख्य पहलू है और अुस लिहाज से मैंने तो अपने मन में पींजन का छेद ही अुड़ा दिया है। सलाअी-पटरी पर ओटाअी और धनुष-तुनाअी से पूनी बना लेना अेक स्वयंपूर्ण योजना है, जो हर घर में बन सकती है, प्रायः हर हाथ से बन सकती है। चार साल के बच्चे से लेकर अस्सी साल के बूढ़े तक धनुष-तुनाअी मज़े में करते हुअे मैंने देखा है। अुससे पींजने की समस्या हल हो गयी है अैसा मैंने निश्चय कर लिया है। फिर भी खादी विचार के दूसरे भी पहलू हैं जिनमें पींजन की गुंजाअिश है। अुस दृष्टि से यह किताब पर्याप्त है।

साहित्य-संचय में अैसी किताबों का भी मैं निरीक्षण कर रहा हूं, क्यों कि साहित्य की मेरी व्याख्या व्यापक है। जीवन के 'सहित' जो भी ग्यान चलता है, सारा 'साहित्य' है। जो जविन से 'रहित' या जीवन-विमुख है, अुसकी गिनती राहित्य में करनी होगी। और वाङ्मय में अिन दोनों का समावेश होगा। अिस पुस्तक में अच्छा अुपयोगी साहित्य मिलता है और मुझे तो वह काफ़ी मनोरंजक भी लगा है। अिसकी शब्द-सृष्टि भी बहुत व्यापक है। कमी यही है कि शब्दों की कोअी सूची पुस्तक को जोड़ी नहीं गयी है। यह अेक अैसी कमी है जिसे नयी-तालीम का विद्यार्थी बर्दाश्त नहीं कर सकता। शब्द-सूची में सिर्फ़ वैशेषिक शब्द ही नहीं, लेकिन विद्या-संबद्ध सामान्य शब्द भी देने चाहिये; संग्याअें, विशेषण, धातु अलग अलग। कोअी शिक्षक अगर अैसी पुस्तक के आधारपर पींजन के पारिभाषिक और पारिवारिक शब्दों-की, शिक्षण और वाक्-प्रकाशन के ख्याल से, चर्चा करनेवाली अेकाध किताब लिखेगा तो वह बहुत दिलचस्प और नयी तालीम के लिअे अुपकारक होगी! पुस्तक के तेअिसवें प्रकरण में पींजन-कला की परिभाषा थोड़े में समझायी है। अुतनी पढ़ने से भी मालूम होगा कि अिस पुस्तक में कितना साहित्य भरा है। अुस शब्द के मेरे व्यापक अर्थ में ही नहीं, लेकिन प्रचलित सीमित अर्थ में भी। थोड़ा धातु पाठ देखिये :

सटियाना, लेना, फिराना, झड़ाना, सजाना, झाड़ना, छुड़ाना, अुठाना, अुड़ाना, पकड़ना, ठेलना, बिछाना, चढाना, भरना, फैलाना, अुलटाना, बांधना अित्यादि

परिच्छेदों की अनुक्रमणिका वर्णानुक्रम से दी है, अुतने पर से ही क़रीब दो अेक सौ पारिभाषिक शब्द तो मिल ही जाते हैं। लेकिन वह तो अेक अंश मात्र है। सारा वाग्-विस्तार विवृत करने वाला कोअी पिंजारा– पाणिनी निकलेगा तो वह हर शब्द को अुसकी व्युत्-पत्ति के साथ खोल कर रखेगा, जिससे अुद्योग द्वारा भाषा किस तरह सिखायी जा सकती है अुसकी तस्वीर देखने को मिलेगी। यह विचार खास अिस मध्यम पींजन के लिअे ही लागू नहीं है। सारी खादी-विद्या के लिअे कोष-व्याकरण आदि बनाने की बात है। अिस पुस्तक के निमित्त से मैंने वह सुझायी, क्यों कि अिसमें मथुरादास भाअी को कअी नये पारिभाषिक शब्द बनाने पड़े हैं जो सहज ही ध्यान खींचते हैं।

आरंभ में शिक्षकों के लिअे कुछ सूचनाअें दी गयी हैं। अुसमें आख़िरी सूचना में लिखा है : 'अच्छा से अच्छा धुनकर पूनी बना लेने की अधिक से अधिक गति प्रति घंटा ७ तोले है, जब कि पूनियाँ अैसी हों जो तोले में १५ चढ़ें। १५ की संख्या कैसे निश्चित की है, समझ में नहीं आया। हम तो मानते थे कि पूनियाँ तोले में १६ होनी चाहिये, क्यों कि अुससे हरेक पूनी –) आने भार होती है और सूत के नंबर का अंदाज़, कितनी पूनियों में से कितने तार काते, अुसपर से मिल जाता है। शायद यह मुद्रण-दोष हो, यद्यपि वह शुद्धि-पत्र में दर्शित नहीं है।

परंधाम, पवनार विनोबा
ता. ५-१-५०

गांधी-आश्रम-भजनावली (तमिऴ)

तमिऴ-नाडु-चरखा-संघ की तरफ़ से प्रकाशित की हुअी भजनावली की यह तीसरी आवृत्ति है। कुल छियानब्बे पृष्ठों में से आधे पृष्ठों में आश्रम की नित्य की प्रार्थनाअें आदि दी हैं। मूल

संस्कृत, अरबी आदि नागरी में दिया है, वही तमिळ अक्षरों में दिया और बाद तमिळ में अुसका तरजुमा भी ! अुत्तर विभाग में तमिळ भाषा के थोड़े भजन दिये हैं। गये साल जब मैं तिरपुर में अेक हफ्ता रहा था तब अिसके तामिळ भजनों का मैंने अभ्यास कर लिया था। मुझे वह चुनाव अच्छा लगा था। कवियों का निर्देश अुसमें नहीं था तो मैंने अपनी पुस्तक में कवि के नाम लिख लिये थे। अिस आवृत्ति में वे दिये हुअे हैं। संबंधर से लेकर भारतियार तक तमिळ साहित्य का बिंदु-मात्र का परिचय हो जाता है। आखिर प्रार्थना की महिमा पर गांधीजी के दो प्रवचन जोड़े हैं और अुसी विषय पर मेरा वहां का अेक व्याख्यान आरंभ में दिया हुआ है। मुझे यह भजनावली प्रिय हुअी। अुसकी विशेषता यह है कि वह अति लोभ से मुक्त है। आम जनता के लिअे अैसी छोटी चीज़ें काम देती हैं।

परंधाम, पवनार
५।१।५०

विनोबा

विश्व-शांति परिषद

[जी. रामचंद्रन, अ० भा० ग्रा० संघ, वर्धा]

समझने और खोजने की दृष्टि

अनेक देशों के शांतिवादी हिंदुस्तान आने की अुत्सुकता से बाट जोह रहे थे। वे गांधीजी के जीवन-काल में अुनके साथ बैठकर दूसरे महायुद्ध को, जिससे सारी संस्कृति का पूरा विनाश होने का भय था, दूर करने के लिअे रास्ता ढूँढ़ना चाहते थे। किन्तु गांधीजी अचानक चले गये। यद्यपि वे नहीं हैं तो भी अुनके सहयोगी और अुनका काम तो भारतवर्ष में हैं ही। अिसलिअे लगभग ३७ देशों से ये लोग समझने और खोजने की दृष्टि से भारतवर्ष आये। वे अेक सप्ताह तक शांतिनिकेतन में और फिर अेक सप्ताह तक सेवाग्राम में, गांधीजी के साथ जिन लोगों ने काम किया अुनसे, मिले। अिन दो बैठकों के बीच में जो समय मिला, वे हिंदुस्तान में घूमे और कअी प्रांतों में जो रचनात्मक काम चलता है, अुसे देखा। शांतिनिकेतन और सेवाग्राम अिसीलिअे चुने गये थे, चूँकि संसार में अुन्हें शांति का केन्द्र समझा जाता है। परिषद का काम अेक वास्तविक छोटे संयुक्त-राष्ट्र-संघ की तरह चला।

सच्चे रचनात्मक कार्यकर्ता

जो भाअी—बहन अिस प्रकार अेकत्रित हुअे थे अुनमें से कोअी भी न तो कोअी सत्ताधिकारी था और न राजनितिज्ञ ही। ये सब भाअी युरोप और अमरीका के सच्चे रचनात्मक कार्यकर्ता थे। अुन्होंने अपने ढंग से अपने अपने देशों में हिंसा की समस्या का मुकाबला किया था। और अुसके फलस्वरूप कभी कभी तो काफ़ी कष्ट और यातनाअें भोगी थीं। जर्मनी, नॉर्वे, फ्रान्स और डेन्मार्क से कुछ अैसे लोग आये थे जो नाज़ियों के भयंकर आतंक के समय भी सत्य और अहिंसा पर दृढ़ रहे।

काम का ढाँचा तैयार हुआ

शांतिनिकेतन में विश्वशांति की समस्या पर प्रत्येक दृष्टि से विचार करने और आअिंदा के

[शेष पृष्ठ संख्या ३६९ पर]

चर्चावली

[दामोदरदास मूंदड़ा]

कस्तूरबा-शिविर-सेवाग्राम की बहनों से बातचीत

सेवाग्राम में पिछले दिनों कस्तूरबा-स्मारक-ट्रस्ट की सेविकाओं का जो अखिल भारतीय शिबिर हुआ, अुसके लिअे श्री सुशीलाताअी पै ने पहिले ही से विनोबा से समय मांग रखा था। परंतु स्वास्थ्य ठीक न होने से विनोबाजी सेवाग्राम नहीं जा सके थे। अिसलिअे शिबिर की बहिनों को लेकर श्रीमती सुशीला बहन अेकदिन शाम की प्रार्थना में शरीक होने के लिअे परंधाम आश्रम आयीं। प्रार्थना के बाद बातचीत का कार्य-क्रम रखा गया था।

विनोबाजी की चारों ओर सब बहिनें बैठ-गयीं। पीछे 'परंधाम' की पार्श्व-भूमि है, नीचे दक्षिण वाहिनी धाम है जो वरदा नदी में विलीन होकर आगे गोदा में समा जाती है। अिसी धाम में अेक पंचधारा तीर्थ है जिसके प्रपातों की ध्वनि वातावरण में नित गूंजती रहती है, मानो रामनाम की अखंड धुन ही चल रही हो।

अिसी पंचधारा में बापू की अस्थियाँ भी रखी गयी हैं और यहीं ता. १२ फरवरी को हर-साल मेला लगा करता है। जैसा कि विनोबा ने सुझाया है, समर्पण के लिये अिस वर्ष अिस मेले में हर यात्री आते समय अपने हाथ-कते सूत की अेक गुंडी (६४० तार) लेते आयें, अैसा प्रचार कार्यकर्त्ता लोग कर रहे हैं। अपनी कर्म-मय अुपासना की यह श्रद्धांजली लेकर हज़ारों लोग अिस मेलेपर जुटेंगे अैसी अपेक्षा है।

प्रार्थना का नया स्वरूप

प्रार्थना समाप्त करके सब लोग आसनों पर बैठे। मेहमानों के लिअे प्रार्थना स्वयं अेक जिज्ञासा का विषय हो सकता था, अुसके परिवर्तित और बिलकुल नये स्वरूप के कारण।

श्री. सुशीला बहन पै ने ही शुरू किया :

"आप आज कल खड़े रहकर प्रार्थना करते हैं और वह भी अितने अुंचे स्वर से, तो क्या अैसी कोअी प्रेरणा आपको हुअी है ?"

"हां प्रेरणा हुअी है।" विनोबा ने जवाब दिया। "प्रार्थना अैसे हम बैठ कर भी कर सकते हैं, सोये सोये भी कर सकते हैं, हर हालत में कर सकते हैं। लेकिन खड़े रहने में 'तैयारी' की भावना रहती है कि हम तैयार हैं— परमात्मा के दर्शन के लिअे। ध्यान की दृष्टि से बैठना ज़्यादह अनुकूल है। केवल अव्यक्त चिंतन करना हो तो खड़े रहने के बजाय बैठने से अधिक लाभ होता है। लेकिन जहाँ समुदाय के साथ प्रार्थना करनी है, खड़े रहकर प्रार्थना करने से भाव अच्छा जाग्रत होता है।

"मैं अब क़रीब डेढ़ साल से घूम रहा हूँ। छोटी-मोटी हर बात का मैंने सूक्ष्म निरीक्षण किया है। हर घटना का मुझपर अच्छा असर हुआ है। मैंने देखा है कि और बातें मैं जो कुछ भी कहूँ या करूँ, प्रार्थना के द्वारा मैं सबसे ज्यादह सेवा कर सकता हूँ। महिलाश्रम में मैंने खड़े रहकर प्रार्थना करने का प्रयोग शुरू किया। शाम को तो वहाँ भी बैठकर ही प्रार्थना होती थी। लेकिन सवेरे की प्रार्थना खड़े रहकर

होने लगी। मुझे अुसका अच्छा अनुभव हुआ। सबको हुआ।"

प्रेम-नदी का स्नान

पंजाब से आयी अेक बहन ने पूछा :–

"हमारी संस्थाओं में प्रार्थना और धर्म का स्वरूप क्या हो, जिससे कि बच्चों की अभिरुचि सुधर सके और अुनकी आध्यात्मिक अुन्नति भी हो सके ?"

"बच्चों की आध्यात्मिक अुन्नति के ख्याल से प्रार्थना शुरू ही नहीं करनी चाहिये", विनोबा ने समझाया-"अगर हमको खुद को प्रार्थना की ज़रूरत नहीं महसूस होती है तो बच्चों को भी अुसकी ज़रूरत नहीं हो सकती। अगर हमें लगता है कि प्रयत्न करने पर भी दिन भर के काम में हम से गलतियाँ होती हैं और अुनके सुधार के लिअे परमात्म–शक्ति से मदद लेनी चाहिये, तो अुसके लिअे हम प्रार्थना करें। यह जो नदी सामने बह रही है, अुसीकी मिसाल हम लें। हमारे बदन को वह धो सकती है, अगर अुसके पास हम पहुँच जायँ। अुसी तरह परमात्म-रूपी प्रेम-नदी भी हमारे पापों का क्षालन कर सकती है, अगर हम टूटे-फूटे शब्दों में भी क्यों न हो, अपना हृदय अुसके पास प्रकट करें। अिस तरह हमारी अुन्नति होगी और जहाँ हमारी होगी, बच्चों की भी होगी।"

शिथिलता क्यों ?

प्रार्थना का विषय समाप्त हुआ तो दूसरी अेक बहन ने पूछा –"बापू के बाद चारों तरफ़ शिथिलता ज्यादा मालूम हो रही है। लोग अुनके सामने अुनके विचारों को मानते थे, अुनपर अमल भी करते थे। लेकिन आजकल अैसा नहीं दीखता है।"

"हमारा अनुभव तो अिससे अुलटा है," विनोबा ने कहा, "बापू के जाने के बाद हम तो शिथिलता का अनुभव नहीं कर रहे हैं। अुत्साह ज्यादा लगता है। लेकिन अगर आपको अैसा मालूम होता हो कि वातावरण में शिथिलता है तो अुसके बारे में भी सोचा जा सकता है।

"मैं पूछता हूँ कि बापू के विचारों पर हम चलें ही क्यों ? क्या दूसरों की आँखों से हम देखते हैं ? क्या दूसरों के पावों से हम चलते हैं ? हमें तो अपने विचारों पर चलना चाहिये। बापू सबेरे जल्दी अुठते थे अिसलिअे हम अुनका अनुकरण भले ही करें। परंतु अगर सबेरे जल्दी अुठने से हमें भी अच्छा अनुभव आता है तो हम जल्दी अुठेंगे ही। अिसमें बापू के विचार की क्या बात है ? अिसलिअे हर बात में बापू के विचार वाली भाषा हमें छोड़ देनी चाहिये। बापू के जो विचार आपको पसंद आते हों, और न सिर्फ़ बापू के, बल्कि दूसरों के भी, तो अुन विचारों का जीवन में अनुभव करके, अुन्हें अपने विचार बनाकर, अुनपर अमल करना चाहिये। शिथिलता तब नहीं रहेगी।"

मौन का महत्त्व

प्रार्थना की तरह और अेक जिज्ञासा बहनों के मन में अुठ रही थी। अिसलिअे सबकी ओर से सुशीला बहन ने फिर पूछा– "आप आजकल दिन में भी मौन क्यों रखते हैं ?"

"मौन वैसे तो मेरा बरसों से चलता है,।" विनोबा ने जवाब दिया,–"शाम की प्रार्थना के बाद करीब नौ बजे से तो सबेरे की प्रार्थना तक का। सबेरे पहिला काम प्रार्थना और फिर मौन समाप्त। शायद पच्चीस साल से ज्यादह हुअे हों, यही क्रम जारी है।

"हम अंतकाल में परमेश्वर-मय होना चाहते हैं। वही अुपमा दिन के लिअे समझिये।

अंत काल में जो भावना हम रखना चाहते हैं, वही अगर हम दिन के अंत में रखें तो नींद के बाद सबेरे अुसका परिणाम नज़र आता है। मैंने अैसा अनुभव किया है। बहुत से सवाल, जो निद्रा के पहले नहीं सुलझ पाये थे, जागते ही सुलझे हुअे मालूम हुअे। गाढ़–निद्रा केवल निद्रा–रूप नहीं है। वह अेक समाधि है। बीज मिट्टी से ढके जाने पर दीखता नहीं है, पर अंकुरने की तैयारी करते रहता है। निद्रा के आवरण में विचार का बीज जब ढक जाता है तो शांतमय वातावरण में अुसका भी विकास होता है।

"मौन से शारीरिक लाभ भी मुझे हुआ है। और फिर तो आश्रम भर में भी मौन रहने लगा। आपसी बात-चीत के कारण होने वाली तकलीफ़ से बीमार लोग बच गये। अुतनी हिंसा रुक गयी।

"आज कल मैं जो मौन रखता हूं वह कुछ तो चिंतन के लिअे भी ज़रूरी है, चिंतन– मैंने पिछले दिनों जो कुछ देखा, अुसका। कुछ स्थायी स्वरूप का काम भी, जो प्रवास में नहीं हो पाता था, कर लेना है।

"फिर, दिन तो काम के लिअे है। बात-चीत में अुसे क्यों गवाँयें? चर्चाअें तो रात में भी हो सकती हैं। यह भी अेक विचार अिस मौन में है। लेकिन अिस प्रकार का यह मौन नैमित्तिक है, थोड़े दिन के लिअे ही रखा गया है, यहाँ परंधाम में हूँ तब तक के लिअे। लेकिन अब आप लोग कुछ अपनी बात बताअिये।"

अिसके बाद श्री सुशीला बहन पै ने शिबिर का अुद्देश्य और कार्यक्रम बताया। करीब करीब हर सूबे से बहनें आयी थीं, जो यहाँ से जाकर और बहनों को ट्रेनिंग देंगी। सेवाग्राम में शिबिर रखने का अेक अुद्देश्य यह भी बताया गया कि यहाँ की विभिन्न संस्थाओं के काम को देखें, अुनके अनुभव से अपने अनुभव में वृद्धि करें।

चिंतन के लिअे समय निकालना आवश्यक

सुशीला बहन पै के अिस निवेदन के बाद विनोबा ने चर्चा का अुपसंहार करते हुअे कहा–

"हमको यह बहुत अच्छा लगा कि आप लोग कुछ अनुभव लेने के लिअे, कुछ ज्ञान-विज्ञान पाने के लिअे, यहाँ आयीं। हमने तो कअी बार कहा है कि दिन भर में कम से कम अेक घंटा, और साल भर में कम से कम अेक माह, अपने नित के काम से अलग होकर चिंतन, मनन, निरीक्षण में बिताना चाहिये। अिससे मनुष्य को नये नये विचार सूझते हैं। नहीं तो अुसकी सूझ रुक जाती है। वास्तव में अैसा होना तो नहीं चाहिये। कर्म करते करते ही मनुष्य को सूझते भी रहना चाहिये। परंतु कर्म अलग चीज़ है, कर्म-कांड अलग चीज़ है। कर्म जब कर्म-कांड की तरह तांत्रिक बन जाता है तो चिंतन के लिअे अलग समय निकालना बहुत ज़रूरी हो जाता है। खास कर स्त्रियों के लिअे तो वह बहुत ही ज़रूरी है। स्त्रियाँ शुरू से ही सेवा-परायण होती हैं। परंतु सेवा-परायणता का यह अर्थ नहीं कि चिंतन के लिअे अवसर ही न हो।

"आप लोग सेवाग्राम आयीं, यह और भी अच्छा हुआ। मैं हिंदुस्तान में बहुत जगह घूमा हूँ, परंतु साधना की जैसी संपत्ति मैंने यहाँ देखी है, और जगह नहीं देखी। मेरे लिअे यह कोअी अभिमान की बात नहीं है, दुख की ही बात है। मैं तो यह सोचता था कि भारत-भर

में जगह जगह यहाँ की तरह ही काम चलता होगा। अेकाध विषय की साधना तो कहीं कहीं चल रही है। परंतु जैसा समग्र दर्शन यहाँ मिलता है, मुझे और कहीं नहीं मिला।

नीर-क्षीर विवेक

"यह वर्धा अेक तीर्थ-स्थान हो गया है। यहाँ त्रिस्थली-यात्रा है। अुधर सेवाग्राम है, अिधर मगनवाड़ी है, यहाँ परंधाम है। यह नहीं कह सकते कि यहाँ की किसी चीज़ में कोअी दोष नहीं है। सुधार की गुंजाअिश यहाँ है। अंतः परीक्षण की भी ज़रूरत है। फिर भी आप जैसी सेविकाअें अगर नम्रता की वृत्ति रखें और अच्छाअी को देखने और ग्रहण करने का प्रयत्न करें तो यहाँ पाने लायक आपको बहुत कुछ मिलने वाला है।

"आप अपने शिबिर में रोज़ व्याख्यान सुनती हैं, लेकिन सिर्फ़ ये व्याख्यान काफ़ी नहीं हैं। जो कार्यकर्ता यहाँ बरसों से काम कर रहे हैं, अुनका अितिहास आपको जानना चाहिये। अुनके काम करनेके ढँग को समझना चाहिये। आपको अुससे बहुत सीखने को मिलेगा।

कस्तूरबा-ट्रस्ट की सेविकाओं से अपेक्षा

कस्तूरबा-सेवा-ट्रस्ट से मैंने बहुत आशा रखी है। कस्तूरबा-ट्रस्ट की सेविकाअें समाज के हर हिस्से में प्रवेश कर सकती हैं, ठीक अुस ढंग से, जिस ढंग से अहिंसा चाहती है। हिंदुस्तान की जितनी स्त्री-संस्थाअें हैं, अुनमें जिनका रुझान देहात की सेवा की ओर है, वे सबकी सब कस्तूरबा-स्मारक-ट्रस्ट के ध्यान में आ जानी चाहिये, सबकी सब। यह ज़रूरी नहीं है कि वे संस्थाअें हमारा ही कार्यक्रम अपनाअें। वे अपना निजी कार्यक्रम चला सकती हैं। अगर अुनकी वृत्ति ग्राम-सेवा की है तो हमारे लिअे अुतना काफ़ी है।

"सारांश, वे सारी संस्थाअें हमारे परिवार की हो जानी चाहिये। नयी संस्थाअें भी हम खोल सकते हैं, नया काम हमें करना भी है। परंतु सिर्फ़ नयी संस्थाओं के भरोसे काम बहुत धीरे आगे बढ़ेगा, प्रगति बहुत आहिस्ता होगी। अिस लिअे नये काम की हद तक ही हम अपना दायरा सीमित न रखें, जो संस्थाअें आज काम कर रही हैं, अुनको भी हम हमारी कहें, हमारी मानें। तब आप देखेंगे कि हम कितने व्यापक बन जाते हैं, स्त्री संस्था-रूपी सब नदियों का हम समुद्र बन जाते हैं। अिस तरह सीखने को भी काफ़ी मिलेगा, क्यों कि अुनके भी अपने कुछ अनुभव हैं। कुछ बातें दोनों अेक दूसरे से ग्रहण कर सकेंगे। प्रगति व्यापक होगी तीव्र गति से होगी।"

× × × ×

अिसी तरह अेक रोज़ श्री. आशा बहन भी अपने ट्रेनिंग कॉलेज के शिक्षक-छात्रों और बुनयादी-विद्यालय के विद्यार्थियों को लेकर शाम की प्रार्थना में शरीक होने आयी थीं। प्रार्थना समाप्त होनेपर सब लोग अुसी तरह विनोबा की चारपाअी के अिर्द-गिर्द बैठ गये। पूर्ण चन्द्र के प्रकाश में खादी खूब खिल अुठी। शुरू में भिन्न भिन्न प्रांतवाले विद्यार्थियों ने अपनी भाषा के कुछ गीत सुनाये। थोडी देर निस्तब्ध वातावरण रहा—तो अेक भाअी ने, अिस खयाल से कि अब सवाल पूछे जा सकते हैं, 'स्वावलंबन' के अर्थ के बारे में जानना चाहा। जवाब में विनोबा ने मेहमान और अुनके काम का कुछ परिचय पाना चाहा। लिहाज़ा 'स्वावलंबन'

वाले सवाल को थोड़ी देर रुकना पड़ा और आशादेवी ने सब मेहमानों का परिचय करा दिया, जिनमें अक्सर विद्यापीठों के स्नातक और शिक्षण-क्षेत्र में थोड़ा-बहुत अनुभव रखनेवाले लोग थे, कअी सरकार की तरफ़ से भी आये हुअे थे। अिन्हें अब सेवाग्राम आकर दो माह हो चुके थे। अिस बीच अुन्होंने तकली और चरखेपर कातना सीख लिया था तथा अब खेती में भी काम करना शुरू किया था।

‘क्या आप वे ही लोग हैं, जिनके कॉलेज का अुद्घाटन करने के लिअे दो माह-पूर्व मुझे बुलाया गया था?’ विनोबा ने पूछा।

‘जी हाँ’, दो-चार मित्रों की अेक साथ आवाज़ आयी।

‘आप लोग पहिले से कुछ दस्तकारी जानते थे या यहीं आकर शुरू की?’

आशा देवी: ‘कुछ लोग जानते थे। बाकी सबने यहाँ आनेपर ही शुरू की। लद्दाख के भाअी पहले से ही बुनाअी जानते थे। पंडित जी ने खास तौर से अिन्हें भेजा है। बहुत चाहते हैं वे अिन्हें।’

महान् संस्कृति की ओर

“ठीक तो है, दो संस्कृतियों का संगम जो हो रहा है यह।” विनोबा ने बात शुरू की, “पंडित जी वहाँ से काफ़ी आशा रखते हैं। यह समय अैसा है कि दुनिया के अच्छे अच्छे लोगों को अब काम करना है। हरअेक संस्कृति में कुछ अच्छी-बुरी बातें होती हैं। जहां संस्कृतियों के लिअे प्रेम-भाव होता है वहां कोशिश यही होती है कि अपनी संस्कृति की बुराअियों को दूर करें, दूसरी संस्कृतियों की अच्छाअियों को ग्रहण करें। लेकिन जहां संस्कृति का अभिमान रहता है वहाँ अपनी बुराअी कायम रहती है, दूसरों की अच्छाअियों को लेने की कोशिश ही नहीं होती। हमें संस्कृति का अभिमान नहीं रखना है। दुनिया में जितनी संस्कृतियाँ चल रही हैं, अुन सबमें अच्छाअी है। अिसलिअे अच्छाअी जहाँ जहाँ से भी मिले, हमें अुसका समन्वय करना चाहिये। अिस तरह हिन्दुस्थान में अेक महान् संस्कृति का निर्माण होगा।”

समन्वय और सहिष्णुता वाला देश

फिर, संस्कृति-संगम की परंपरा का जो दर्शन भारत में होता है, अुसको समझाते हुअे कहा:

लद्दाख बौद्ध हैं। बुद्ध धर्म तो हिंदुस्थान में ही जन्मा है। मैं मानता हूँ कि बुद्ध-धर्म ने हिंदु-धर्म में सुधार किया है। मौके-मौके पर धर्म-सुधार करना पड़ता है। तो बौद्धों के लिअे यह भूमि प्रेम-भूमि है। लंका वाले भी हमारे मित्र ही हैं, क्यों कि अुनका भारत से अभेद-संबंध है। और मुसलमान तो बरसों से यहां रह रहे हैं। अिधर जावा, सुमात्रा आदि हमारे पड़ोसी राष्ट्र मुसलमान हैं और अुधर अीरान वगैरा भी हैं। क्रिस्ती धर्म तो पैदा हुआ तबसे यहां पहुँच गया है। आप देखते हैं कि यहां के क्रिस्तियों ने यहां के समाज के साथ अेक-रूप होने का प्रयत्न किया, अपने लिअे कोअी अधिकार नहीं चाहा। पारसी-धर्म के लोग थोड़ेसे हैं, परंतु वे भी यहाँ घुलमिल गये हैं। कुछ यहूदी भी हैं और वे भी पारसी मित्रों की तरह यहाँ की भूमि और जनता से अेक रूप हो गये हैं। सिक्ख, जैन आदि पंथ तो यहीं के हैं।

"अिस तरह सब संस्कृतियों के संगम का बड़ा भारी काम हमें करना है और अिस काम के आधार दो हो सकते हैं : अेक तो यह कि सबने अेक परम पिता परमेश्वर को माना है तो अुसकी भक्ति के विचार में हम सब आसानी से अिकट्ठे हो सकते हैं। यह हुआ तत्त्व-विचार। दूसरा प्रत्यक्ष-विचार। हरेक को रोटी चाहिये। तो अुसके लिअे प्रयत्न भी करना चाहिअे। अिस प्रयत्न में हम सब अेक होकर काम कर सकते हैं। सब संस्कृतियाँ खत्म हो जायँगी अगर रोटी के लिअे प्रयत्न नहीं किया जायगा, या किया जाय तो लाचार होकर, टल सके तो अच्छा, अिस भावना से, क्यों कि अुससे वो संस्कृति, विकृति बन जायगी।

नयी तालीम का आधार

अिसलिअे, परमेश्वर को पहचानना, अुसके नामपर अेकत्र होना और हरअेक को श्रम-निष्ठ बनाना, किसीपर अपना भार न पड़ने देना, किन्तु परस्पर सहकार्य करते हुअे अपने पैरोंपर सबका खड़ा हो जाना, ये हैं दो विचार, जिनके आधारपर नयी तालीम खड़ी है। लेकिन नयी-तालीम वाले अिन दोनों विचारों का अुच्चार नहीं करते, झिझकते हैं। अैसी झिझक नहीं होनी चाहिये। परमेश्वर-कृपा की छत्र-छाया में सब भेद मिट जाने वाले हैं। जैसे आज प्रार्थना में अुस छोटे बालक ने जवाब दिया, 'परमेश्वर सबके हृदय में रहता है'— और यह विचार हमारा साथ देने वाला है, अिस के संबंध में हमें अपनी निष्ठा दृढ़ करनी चाहिये।

अिसी तरह, भगवान् ने हरेक को भूख दी है, तो हरेक को हाथ भी दिये हैं, अिसलिअे भूख और हाथ का मेल होना चाहिये। यह है सहकार्य का विचार। खास परिस्थिति में दूसरों के परिश्रम का अुपयोग हमें करना पड़े यह अलग बात है। बूढ़े माँ-बाप अपनी संतान के परिश्रम का स्वीकार कर सकते हैं, यद्यपि जितना निज से बनता है, वे खुद करते ही हैं। बच्चे भी छोटी अुम्र में अेक हद तक माता-पिता पर निर्भर रहते हैं। यह तो मिसाल के तौर पर मैंने कहा, लेकिन सार बात यह है कि जिस किसी को भूख लगती है, वह अगर अपने हाथ की मिहनत से अपनी रोटी कमा ले तो दुनिया के बहुत सारे झगड़े अपने आप मिट जाते हैं। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, अिसमें नयी बात तो कुछ नहीं है, परंतु जब हम भूल जाते हैं तो हर चीज़ नयी हो जाती है।

"और, क्यों कि हम भूल जाते हैं, याद दिलाने वाले भी बीच बीच में आ जाते हैं और नये ढंग से वही बात हमें अपनी भाषा में समझाकर चले जाते हैं। चांद और सूरज वे ही हैं, फिर भी हर रोज़ नयी रोशनी लाते हैं। विचारों का भी अैसा ही है। वे दूसरे ढंग से अुपस्थित किये जाते हैं अितना ही, बाकी वे सनातन-विचार होते हैं, सत्य-विचार होते हैं।"

ग्यान-रूप क्रिया

फिर प्रचलित शिक्षण शास्त्र और जीवन द्वारा शिक्षण, अिन दोनों विचारों के भीतर का सूक्ष्म भेद समझाते हुअे कहा:

"शिक्षण-शास्त्र के लाख विचार अेक पलड़े में और हरेक को अपने प्रयत्न से रोटी कमानी चाहिये, यह विचार दूसरे पलड़े में रखें, तो अुन लाख विचार वाले पलड़े से यह रोटी वाला पलड़ा भारी होगा। अिसीका नाम कर्म-योग है। अिस विचार को मानने में जिन्हें मुश्किल होती

है, वे शिक्षण-शास्त्र के दूसरे विचारों को भले ही मानते हों-याने क्रिया द्वारा ज्ञान देने के विचार को, फिर भी वे नयी-तालीम का विचार मानते हैं अैसा नहीं कहा जायगा। नयी-तालीम में क्रिया रोटी के लिअे परिश्रम के रूप में खड़ी है; वह सिर्फ़ ग्यान का वाहन नहीं है। वह ग्यान की सहकारी भाव है, जीवन की आधार है—ग्यान-रूप है। अितना अुसका स्वरूप है। दूसरे शिक्षण-शास्त्री यद्यपि क्रिया को स्वीकारते हैं, पर वे अुसे जीवन का आधार नहीं मानते। भाषा तो हमारी ही तरह गंभीर बोलते हैं, परंतु विचार अितना गंभीर वे नहीं रखते। अिसलिअे फिर दस्तकारी का अेक खेल-सा हो जाता है।

"शिक्षण—शास्त्रियों में अेक दुर्-विचार यह भी फैला है कि 'बच्चों को रोटी की चिंता में डालना ठीक नहीं, अुन्हें अुस विचार से बरी रखना चाहिये।' तो मैं कहता हूँ, रोटी की चिंता से जीवन अगर भाररूप होता है, तो वह सबके लिअे होना चाहिये और अिस लिअे सर्वोचित अुपाय है-अुपवास। अगर खाने का हमें भार नहीं मालूम होता, तो श्रम का क्यों होना चाहिये ?"

अिसी विचार को थोड़ा और साफ़ करने की दृष्टि से बिनोबा ने आगे कहा :

"आख़िर हमें रोज़ खाना तो पड़ता ही है। अब अगर केवल देह-भावना से खाया जाय तो विचारक के लिअे जीवन तकलीफ़-देह हो जाता है। आध्यात्मिक-विचारक, जो अपने को देह से भिन्न मानता है, खा तो लेता है पर स्वाद नहीं लेता। स्वाद अुसके लिअे तकलीफ़देह होता है। हम चरखे में तेल डालते हैं, परंतु आनंद तो कातने में आता है। वैसे ही अगर भार मालूम होता हो तो देह को खिलाने में मालूम होना चाहिये, परिश्रम करने में नहीं।

"अिसलिअे जिन्होंने माना कि जीवन की चिंता भार है, अुन्होंने जीवन के बारे में ठीक सोचा ही नहीं है। परमेश्वर की योजना में जीवन भार-रूप या चिंता-रूप नहीं है, वह तो आनंद-रूप है। परंतु हम अुलटा सोचते हैं और फिर कहते हैं कि कमसे कम बच्चों को तो अिससे बचाओ। मैं कहता हूँ कि नहीं, जीवन भार-रूप नहीं है, बच्चों को अिससे बचाने की आवश्यकता नहीं है, जीवन के आनंद से अुन्हें वंचित नहीं रखना चाहिये।

"यह है हमारी दृष्टि। वह कहाँ तक कायम रहती है, कह नहीं सकते। हमरा शिक्षण भी पुराने ढंग से हुआ है। अगर हमारे जीवन में यह दृष्टि सिद्ध नहीं हो सकी तो आगे आनेवाले लोग अुसे सिद्ध करेंगे।"

नयी-तालीम का आनंददायी दृश्य

आशा दीदी ने समय खत्म हो जाने की सूचना दी तो सब लोग चलने के लिअे तैयार हो गये। सबने विदा चाही तो अूपर आकाश-दर्शन कराते हुअे विनोबा ने गुरु और शुक्र की ओर अिशारा कर के कहा : "गुरु सद्गुरु हैं, शुक्र अुसका शिष्य है। गुरु सौम्य है, शुक्र प्रखर है। दोनों अिस समय नज़दीक-नज़दीक आ रहे हैं। थोड़े ही दिनों में दोनों की युति होने वाली है। शुक्र को वेद में वेन कहते हैं। अंग्रेजी में वीनस कहते हैं। दोनों शब्द प्रेम के दर्शक हैं। अेक ग्यान की मूर्ति है, गुरु। दूसरी प्रेम की मूर्ति है, शिष्य। नयी तालीम का कैसा आनंददायी दृश्य है!

सर्वोदय-जगत्

सर्व-सेवा-संघ-वृत्त

आगामी सर्वोदय-संमेलन

(१) आगामी सर्वोदय-संमेलन अप्रैल, ता. ६, १९५० से अनगुल (ओरिसा) में होना तय हुआ है। अनगुल, बंगाल-नागपुर-रेल्वे के ताल-चेर-पुरी-विभाग के मेरा-मंडली-स्टेशन से १४ मील और कटक से करीब ६० मील दूरीपर है।

सर्वोदय मेले का कार्यक्रम

(२) सर्व-सेवा-संघ ने २४-१२-४९ की अपनी बैठक में नीचे लिखा प्रस्ताव पास किया है:-

"सर्वोदय-पक्ष-ता. ३० जनवरी से १२ फरवरी तक-के कार्यक्रम के बारे में लोगों को मार्ग-दर्शन करना ज़रूरी है। अिसलिअे तय किया जाता है कि गांव-सफाअी, शहरों का भंगी काम, सर्वोदय के विचार और साहित्य का प्रचार तथा सूत-अंजली पर ज़ोर दिया जाय। सूत-अंजली के सूत पर सर्व-सेवा-संघ का अधिकार रहे और अुसका विनियोग यथा संभव हर साल होने वाले १२ फरवरी के स्थानिक सर्वोदय-मेलों के लिअे हो। अंजली का सूत जमा करने का प्रबंध सर्व-सेवा-संघ के मंत्री करें।"

—वल्लभ स्वामी
मंत्री, सर्व-सेवा-संघ

विधायक-कार्यकर्ता-संमेलन, पवनार।

सर्वोदय मेले के अवसर पर यह अपेक्षा है कि शायद अिस प्रांत के अनेक विधायक कार्यकर्त्ता पवनार आयेंगे। अिसलिअे अुसी दिन दोहपर २ से ५ तक विधायक-कार्यकर्त्ताओं के अेक संमेलन का आयोजन किया गया है। संमेलन के संमुख जो कार्यकर्त्ता अपने अनुभव रखना चाहते हों, वे अपनी जानकारी नीचे लिखे पते से पहिले से ही भेज देने की कृपा करें।

परंधाम, पवनार, (वर्धा) ९।१०।५०

विनीत
सदाशिव सेवक,
मंत्री, सर्व सेवा समिति, वर्धा

कुछ अितिवृत्त

सर्वोदय के नवंबर के अंक में अितिवृत्त भेजते रहने की जो सूचना निकली थी, अुसके अनुसार चिरगाँव (झांसी) से श्री चारुशीला-शरण गुप्त जी की ओर से गत डेढ़ वर्ष के काम का ब्योरा आया है। श्री. रामकृष्णजी धूत (हैद्राबाद) तो अितिवृत्त बराबर भेजते ही रहे हैं। अहमदनगर के श्री शंकरराव दिघोळकर और सातारा के श्री नादर भी पुराने अितिवृत्त भेजने वालों में से हैं।

—दा०

विश्व-शांति-परिषद

(पृष्ठ ३७० का शेष)

गांधी-विचार अधिक अुन्नत होकर वापिस आयेगा

मुझे लगा कि महात्माजी के संदेश को हमारी अपेक्षा शायद ये ही अधिक तत्परता से फैलाअेंगे। अंत में सत्य अुन्हीं के साथ रहेगा जो अधिक कर्मठ हैं और अंत तक अुसमें लगे रहने की क्षमता रखते हैं। जब कि हिंदुस्तान के हम लोग विचित्र या विलक्षण समझे जाने का खतरा अुठाकर साहस करने में झिझक रहे हैं, पाश्चात्य देशों के ये लोग गांधीजी के संदेश को अपनाअेंगे, भले ही अुससे वे पागल क्यों न समझे जायँ और शायद सौ-पचास साल के बाद गांधी-विचार अिन लोगों के अनुभव से अधिक अुन्नत होकर हिंदुस्तान में वापस आयेगा। बाद में हम अुसे अधिक निष्ठा से अपनाअेंगे।

मगनवाड़ी, ता० १०।१।५०

विश्व-शांति-परिषद

[पृष्ठ ३६० से आगे]

काम के लिअे, अेक स्पष्ट आधार बनाने के लिअे प्रारंभिक चर्चाअें हुअीं। यह काम सरल नहीं था। लोगों ने अपने-अपने ढंग से परिस्थिति का विश्लेषण किया था और हरेक के अपने अलग-अलग हल थे। किन्तु वहाँ बराबर शांति और सुव्यवस्था रही। अिसलिअे न तो समय ही बरबाद हुआ और न अधिक बोलना पड़ा। अिन भाअियों के स्पष्ट विचार और सटीक अभिव्यक्ति से मैं चकित हो गया। अिन चर्चाओं में कुछ भी अतिरंजित नहीं था। अन्याय और शांति, दोनों दुनिया में कभी साथ साथ नहीं रह सकते। अिसे अुन्होंने अपने विचार-विनिमय का बुनियादी अुसूल मान लिया। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और जातीय न्याय के आधार पर ही सच्ची शांति स्थापित हो सकती है। अिसलिअे शांति-स्थापना बहुत करके न्याय-स्थापना ही है। अिसके बाद प्रश्न अुठा, क्या हिंसा के आधार पर न्याय की स्थापना हो सकती है? अिसके लिअे सत्याग्रह का अर्थ और अुसकी प्रणाली पर विचार हुआ। परिषद ने युद्ध और विग्रह के कारणों पर निर्भीक होकर बहुत गंभीरता के साथ विचार किया और अुसके निराकरण के साधन सोचे। यह स्पष्ट हो गया कि शांति-स्थापना का अर्थ अनिवार्य रूप से सामाजिक मान्यताओं और रूढ़ियों में क्रांतिकारी परिवर्तन करना है। शांति निकेतन की बैठक ख़तम होने के पहिले ही सारी चर्चाअें को तीन वर्गों में बाँट दिया गया। वे अिस प्रकार थे:— १. शांतिवादियों को दूसरा महायुद्ध टालने के लिअे तुरंत क्या करना चाहिये? २. न्याय और शांति के आधारपर अेक नये समाज का निर्माण करने के लिअे क्या विधायक कार्यक्रम हो? ३. विश्व-शांति आंदोलन खड़ा करने के लिअे किन बुनियादी अुसूलों और मौलिक आधारों की आवश्यकता है? शांतिनिकेतन में ही परिषद ३ समितियों में बँट गयी। समिति 'अ' ने श्री रामचंद्रन्‌जी की अध्यक्षता में पहला मुद्दा लिया। समिति 'ब' ने श्री. विल्फ्रेड् वेलॉक की अध्यक्षता में दूसरा मुद्दा लिया और 'क' समिति ने श्री रिचर्ड ग्रेग की अध्यक्षता में तीसरा मुद्दा लिया। तीनों समितियों ने शांतिनिकेतन की बैठक ख़तम होने से पहिले ही कम से कम तीन बार विचार विनिमय किया। समितियों का काम था बिना किसी संकोच के सतर्कतापूर्ण और गंभीर विचार करना। तनिक भी समय नष्ट नहीं हुआ और न किसी ने लंबे भाषण ही दिये। समितियों में जो कुछ चर्चा हुअी वह अेक प्रकार का प्रकट-चिंतन ही था।

समितियों का प्रशंसनीय कामकाज

सेवाग्राम में तीनों समितियों की लगातार बैठकें हुअीं और अुपसमितियाँ भी बनीं। 'अ'-समिति की तो नौ अुपसमतियाँ बनीं। अुप-समितियाँ समिति को रिपार्ट देती थीं, और समिति परिषद को। यह सब बड़े परिश्रम का काम था। मैं अिसके पहिले कभी किसी अैसी परिषद में संमिलित नहीं हुआ था, जिसने अितने कम समय में अितनी सफलता के साथ काम किया हो। शांति-परिषद में बहुत अधिक अनु-शासन और सहिष्णुता थी। अिसमें बहुत कम समय नष्ट हुआ और बहुत स्पष्ट तथा अच्छी तरह से व्यक्त निर्णय लिये गये। शांतिपरिषद ने अंत में तीनों समितियों की अनेक रिपोर्टों पर विचार किया। परिषद ने कुछ रिपोर्टों को केवल स्वीकार किया, जब कि बहुतसी को अपना लिया। स्वीकार करने का अर्थ है कि परिषद ने अुन रिपोर्टों को दुनिया के शांतिवादियों में अध्ययन और स्पष्टीकरण के लिअे बाँटने के अुपयुक्त समझा। अपना लेने का अर्थ है कि परिषद अुनका समर्थन करती है और शांतिवादी कार्य-कर्त्ताअें के सामने पेश करती है, ताकि वे अुसे अपना मार्गदर्शक समझें। समिति 'क' की रिपोर्ट, जिसमें शांतिआंदोलन के बुनियादी और मौलिक आधारों का बड़ी सतर्कता से र

किया गया था, और जिसके संबंध में अेक प्रमुख भारतीय प्रतिनिधि ने मुझसे कहा था, 'गांधीजी अिससे बहुत खुश हुअे होते,' परिषद ने अुसे स्वीकार करने का निश्चय किया। चूँकि अिसमें प्राथमिक और सूक्ष्म सिद्धान्त की चर्चा थी, परिषद ने और अधिक स्पष्टीकरण तथा विचार-समता के लिअे समस्त देशों में अुसे बाँटने का विचार किया। 'ब' समिति की रिपोर्ट दो हिस्सों में थी। पहले हिस्से में विश्व-शांति के लिअे रचनात्मक कार्यक्रम के मोटे मोटे अुसूल थे। अिसमें खास तौर से विश्व-संगठन के अनुकूल विकेंद्रीकरण और स्वयंपूर्णता की आवश्यकता का ज़िक्र था। दूसरे हिस्से में तत्संबंधी विधायक कार्य की रूपरेखा थी। परिषद ने समिति 'ब' की रिपोर्ट के दोनों हिस्सों को बहुमत से अपना लिया। समिति 'अ' ने निम्न-लिखित विषयों पर बारह रिपोर्टें पेश कीं :— १. शांतिवादी राजनैतिक बंदी, २. युद्ध बंदी, ३. विश्वनागरिकता ४. अेक संयुक्त विश्व-सत्ता ५. शांति-सेना, ६. दक्षिण आफ्रिका-रंगभेद और औपनिवेशिकता, ७. अमरिकी और रूसी संबंध, ८. भारत और पाकिस्तान के संबंध, ९. अरब और यहुदियों के संबंध, १०. शांति-वादी और साम्यवादी, ११. शरणार्थी और स्थानच्युत व्यक्ति, १२. निःशस्त्रीकरण। समिति ने अिनमें से ४ रिपोर्टों को अपनाया और बाकी को स्वीकार किया।

नैतिक चुनौती

परिषद ने दुनिया के शांतिवादियों के सोचने या ग्रहण करने के लिअे स्पष्ट और सटीक भाषा में कीमती मसाला तैयार कर दिया है। यह अेक सर्वोत्तम चीज़ है, जो स्वभाव से क्रांति-कारी हैं और दुनिया में शांति का काम करना चाहते हैं, अुनके लिअे अेक नैतिक चुनौती है।

दो आवश्यक कदम

क्या यही बस है? अिसके बाद क्या होना है? यह तय हुआ था कि अिस काम को जारी रखने के लिअे किसी केंद्रित या बहुत नियंत्रित संगठन के बनाने का प्रयत्न न हो। हरेक आदमी, परिषद से अुसे जो प्रेरणा मिली है, अपने साथ ले जायें और परिषद ने जिन प्रश्नों पर विचार किया है, अुन्हें कार्यान्वित करने का प्रयत्न करें। तब भी दो अैसे क़दम अुठाये गये हैं जिनसे अुस विचार के लोगों पर काफ़ी जिम्मेदारी पड़ जाती है। अुनमें से अेक विभिन्न देशों में छोटी छोटी शांति-सेनाअें बनाने के संबंध में है। परिषद ने अुनको सत्याग्रही टुक-ड़ियाँ नाम देना पसंद किया है, यद्यपि ये टुकड़ियाँ प्रत्येक देश में स्वभावतः स्थानिक होंगी। अेक छोटा-सा आंतर्राष्ट्रीय वर्ग भी अेक दूसरे से संपर्क रखने और कार्यकर्त्ताओं के शिक्षण तथा काम के लिअे सर्वसामान्य योजनाअें निकालने के लिये निश्चित हुआ है। दूसरा क़दम शांति के आम कार्यकर्त्ताओं के संबंध में है। अिसमें आंतर्राष्ट्रीय दृष्टि, सहयोग और शांति के नित्यप्रति आने वाले कामों के शिक्षण के लिअे युवकों के संगठन पर ज़ोर दिया गया है।

प्रार्थना में श्रद्धा

परिषद की छाप मुझपर बहुत गहरी पड़ी है परिषद में हिंदुस्तान के बाहर से आनेवाले कुछ अैसे व्यक्ति थे जो, मुझे विश्वास है, अहिंसा के बारे में भारतवर्ष के आजके किसी भी व्यक्ति से कम जानकारी नहीं रखते थे। अिन आनेवालों में बहुत-से लोग प्रार्थना में अत्यंत विश्वास रखते थे। वे प्रार्थना को बिना किसी संकोच के जीवन की प्रत्येक समस्या को सुलझाने का साधन मानते थे। वे अत्यधिक धार्मिक वृत्ति के थे, तो भी बिलकुल असामान्य नहीं थे।

[शेष पृष्ठ ३६८ पर]

सर्वोदय की दृष्टि

कर्नाटक का प्रश्न

आंध्र में खुशी की लहर

आंध्र का अलग प्रांत तो अब हो जायगा। कारोबार के कुछ मसले सुलझाने के हैं, लेकिन अुम्मीद है कि वे सारे ठीक से हल हो जायंगे। आंध्र प्रांत में खुशी की अेक लहर-सी अुठी है।

अेक का सुख दूसरे का दुख

लेकिन जहां आंध्रों को खुशी हो रही है, वहां दूसरे रंज में पड़े हैं। अिसलिअे नहीं कि आंध्रवालों को अलग प्रांत मिल रहा है, लेकिन अिसलिअे कि आंध्रवालों को ही मिल रहा है और दूसरे महरूम रह गये हैं। आंध्रवालों से किसी को द्वेष तो नहीं है, लेकिन यह बात ज़रूर है कि अिस वक्त आंध्रवालों को लड्डू नहीं मिला होता तो दूसरे लड़कों को शिकायत का अुतना कारण नहीं रहता, फिर चाहे आंध्रवाले नाराज़ रहते। कैसी अजीब दुनिया है कि अेक हँसने लगा तो दूसरा रोना शुरू कर देता है।

कर्नाटक का अवांछनीय भेदन

लेकिन अिसमें अीश्वर की दुनिया का कोअी क़सूर नहीं है। यह अिन्सान की करतूत है। काम करने का ठीक ढंग अगर हाथ नहीं आया तो नाहक का विरोध पैदा होता है। और अिस मामले में मुझे पहले से लग रहा है कि कुछ ठीक ढंग हमें नहीं सधा है। कर्नाटक वाले पूछते हैं, क्या आंध्र के मसले से कर्नाटक का मसला कम महत्त्व रखता था? सब तरह की निसर्ग-संपत्ति से विपुल हिरण्य-गर्भ कन्नड़-देश, लेकिन अुसकी श्री कांति-हीन-सी हो गयी है, क्यों कि बेचारा पांच टुकड़ों में चीरा गया है। मैसूर, निज़ाम, बंबअी, मद्रास और कुड्ग अितने अुसके राजकीय विभाग पड़ गये। अेक छोटे से लेकिन समर्थ भाषा-विभाग का अितने टुकड़ों में बँट जाना, चाहे अुसको छेदन न कहें, भेदन ही कहें, किसी तरह वांछनीय नहीं हो सकता। यह तो मैंने कन्नड़ वालों की दलील अपनी भाषा में रख दी। जब अुनकी अैसी दलील सुनता हूं तो मेरा दिल अुनके साथ हो जाता है।

अूपरवालों की दलील

अिस पर अूपर वाले कहते हैं कि "भाअी, आपकी दलीलें हमें कबूल हैं, आंध्र के जैसा ही आपका मसला भी महत्त्व रखता है, लेकिन आंध्र का हल हमें कुछ आसान लगा तो अुतना हमने तुरंत कर लिया, अब अुसका ज़रा तजरबा देखें। अिस बीच मैसूर वालों के साथ जो फैसला करना है आप कर लीजिये, फिर आपकी भी मंशा पूरी हो जायगी," तो मेरी बुद्धि अिसको भी मानने के लिअे तैयार हो जाती है। अैसी मेरी दुविधा है। लेकिन मैं अुसे सुविधा मानता हूँ, क्यों कि दोनों बाजू पर श्रद्धा होने से मैं अुस कटुता से बच गया हूँ, जो दोनों बाजू दिखायी दे रही है और जिसकी कि मेरी राय में कोअी वजह नहीं है।

अिस्तिफ़े, सिर्फ़ दुख का अिज़हार

अभी कर्नाटक वालों ने अपने पदों के अिस्तिफ़े देने की अिजाज़त चाही थी। लि...

अूपरवाले सख्त नाराज़ हैं। कहते हैं, यह अेक बग़ावत-सी हो जाती है, जिससे कांग्रेस के टुकड़े पड़ जाअेंगे। तो वे जवाब देते हैं, हमने अिस्तिफ़े दिये तो नहीं। हमने सिर्फ़ अपनी मंशा आपके सामने रखी है। अिस्तिफ़े देना अेक बात है, देने की अिजाज़त मांगना दूसरी बात है। ये बग़ावत के लक्षण नहीं हैं। हमने सिर्फ अपने तीव्र दुख का अिस तरह अिज़हार किया है।

दोनों बाजू देखिये

अेक पक्षवाले कहते हैं, देश के सामने कअी कठिन समस्याअें खड़ी हैं। अुस हाल्त में थोड़ा सब्र करोगे तो तुम्हारा क्या बिगड़ेगा? तो दूसरा पक्ष अुत्तर देता है, यही बिगड़ता है कि जब तक हम टुकड़ों में विभाजित हैं, देश की समस्याअें सुलझाने में हमारी शक्ति का पूरा अुपयोग ही नहीं होता। अेक-अेक पक्ष अपना ही देखता रहेगा तो अैसे अुत्तर-प्रत्युत्तर होते ही रहेंगे। सत्य के अेक अेक पहलू को लेकर विरोधी पक्षों में खड़े होना सत्याग्रह नहीं है। अिसलिअे समस्या को दोनों बाजू से देख कर सुलझाने का ही निश्चय कर लेना चाहिये।

गंड और हेण्णु का अभेद

कर्नाटक के मामले में, जैसे कि मैं अूपर कह चुका हूँ, मेरा हृदय कर्नाटक के साथ है, लेकिन बुद्धि का झुकाव कुछ दिल्ली वालों की तरफ़ भी है। अिसलिअे मेरे कर्नाटक के मित्रों से मेरी सूचना है कि वे *गंड और *हेण्णु-कन्नड़ का मिलाप साधने में लग जायँ। दुनिया भर में गंड और हेण्णु साथ ही रहते हैं और अुनके हित अेक-दूसरों से अभिन्न होते हैं। यदि अितना मंगल-कार्य अगर वे साध लेंगे तो सबके आशीर्वाद अुनको मनःपूर्वक मिल जायेंगे।

आर्थिक प्रश्न

कन्नड़ और केरल प्रांतों के बारे में कोअी खास आर्थिक कठिनाअियाँ भी नहीं हैं, क्योंकि मैसूर-प्रांत अगर आर्थिक क्षमता रखता है तो अुसके साथ अुसी तरह के और पांच-सात ज़िलों के जुड़ जाने से आर्थिक-अक्षमता पैदा होने का कोअी कारण नहीं हो सकता। यही दलील केरळ के लिअे भी लागू है।

बड़ा दिल चाहिये

आख़िर अेक बात रह जाती है। वह है, सीमा-प्रदेशों के निर्णय की। अिस बारे में अपने अपने दावे ज़रूर पेश किये जायँ, लेकिन अुसमें न आग्रह होना चाहिये न कटुता। दो-चार लाख अिधर या अुधर, यह कोअी बड़ी बात नहीं है। अिसलिअे निर्णयकारी समिति जो भी निर्णय दे, संतोष-पूर्वक स्वीकार करने की वृत्ति होनी चाहिअे। आंध्र वालों ने मद्रास शहर के बारे में अैसा ही कुछ रुख अख्तियार कर के काम आसान बना दिया है। वैसा ही दूसरे भी करेंगे तो कोअी आफ़त आनेवाली नहीं है और सब शुभ होनेवाला है। सबका अविरोध सधना अेक बड़ी बात है। अुसके लिअे दिल बड़ा चाहिअे। और मैं जानता हूं कि भारत की वसीअत जिन्हें मिली है अुनका याने यहां की आम जनता का, दिल बड़ा ही है। सिर्फ शिक्षित लोगों में से ही कुछ बहकावे में आ गये हैं और तंग-दिल बन गये हैं। अुसपर थोड़ा अंकुश रखा जाय और अुसका स्पर्श अिस प्रश्न को होने न दें।

परंधाम, पवनार — विनोबा

२-१-५०

---

*कन्नड़ में गंड याने पुरुष और हेण्णु (हे=ह्रस्व) याने नारी। मैसूर की कन्नड़ भाषा अुत्तम कन्नड़ मानी जाती है, जिसे नारी-कन्नड़ कहते हैं। अिधर धारवाड़ आदि की भाषा वैसी अुत्तम नहीं मानी जाती। अुसको पुरुष-कन्नड़ कहते हैं।

हैद्राबाद और निज़ाम

अभी राजाजी दक्षिण हैद्राबाद हो आये। वहाँ के अुनके अेक भाषण में अुन्होंने श्रोताओं को निज़ाम की सद्भावनाओं का परिचय कराया। अुनके कथन का सारांश यह था कि "निज़ाम अपने को अेक हिंदुस्तानी की हैसियत से देखते हैं और प्रजा का सब तरह भला चाहते हैं। अुनकी अितनी ही अिच्छा रहती है कि अुनके राज की अिकाअी बनी रहे। अुस राज की स्थापना अेक कठिन ज़माने में हुअी थी, तो आज भी वह अैतिहासिक स्मृति यथा संभव क़ायम रहनी चाहिये, अैसी मनोभावना अगर निज़ाम को रहती है तो वह स्वाभाविक ही है।"

अैसी अिच्छा अगर निज़ाम के मन में रहती है तो अुसे अस्वाभाविक तो कोअी नहीं कहेगा, लेकिन सवाल यही होगा कि वह कहां तक अुचित है। कोअी भी अिच्छा सिर्फ़ स्वाभाविक होने से योग्य नहीं कही जा सकती। अुसको नैतिक कसौटी पर कसना होता है। निज़ाम को अपने मन में अुदयपुर और *तिरु-विदांकूर के राज्यों के अितिहास का थोड़ा मनन करना चाहिये। अुन राज्यों की स्थापना बहुत ही विषम परिस्थिति में हुअी थी, और क़रीब बारह सौ साल हुअे, वे अखंड चलते आये। अुनके विषय में वहां की प्रजा के मन में आदर और पावित्र्य की भावना बनी हुअी थी। निज़ाम के राज के विषय में अैसा कोअी दावा नहीं किया जा सकता। अुसकी स्थापना अभी दो-ढाअी सौ साल की है। अुसके अितिहास के साथ प्रजा के मन में कोअी ख़ास पावित्र्य की भावना भी नहीं है। जैसे कि अेक राजवंश में कोअी भले और कोअी बुरे राजा होते हैं, निज़ाम के वंश में भी हुअे हैं। लेकिन अुसकी पचरंगी प्रजा तो ज़बर्दस्ती से ही अेकत्र रखी गयी है, अैसा कहने के सिवा कोअी चारा नहीं है। अिस हालत में प्रजा की अिच्छा से भिन्न अपनी अेक निजी अिच्छा निज़ाम को क्यों रखनी चाहिये? लोकाराधन ही राजाओं का व्रत माना गया है और अुसके लिअे व्यक्तिगत 'स्नेहं दयां च सौख्यं च' छोड़ने की, और संतोषपूर्वक छोड़ने की अुनकी तैयारी होनी चाहिये।

जब आन्ध्र प्रांत अलग बन रहा है तब अस्सी लाख आंध्र, जो निज़ाम के राज्य में पड़े हुअे हैं, अगर आंध्र में लीन होना चाहें तो अुसे कौन कैसे रोकेगा? यही बात वहां के मराठी और कन्नड़-भाषी लोगों के लिअे है। अिसलिअे अिसका जो भी फैसला खुले दिल से वहां की जनता करेगी, अुसे प्रमाण मानना ही लाज़मी है।

मैं वहां के मुसलमानों के हित की दृष्टि से भी सोचता हूँ तो मुझे यही बेहतर लगता है। अुनका हित वहां की आम जनता के साथ अेकरूप होने में है अैसे मैं मानता हूँ। और अभी जब मैं निज़ाम राज में घूम आया तो हर जगह मैंने यही बात समझायी थी। मैंने देखा कि अभी वहां के मुसलमानों की प्रवृत्ति देहात छोड़-कर शहरों का ही आश्रय लेने की है। वे वहां के लोगों की भाषाअें भी अच्छी तरह बोल नहीं सकते, पढ़ नहीं सकते, लिख नहीं सकते। यह स्थिति अुनके लिअे अच्छी नहीं है।

महाराष्ट्र के ब्राह्मणों में भी अैसी ही प्रवृत्ति दीख रही है। देहातों से रूठकर वे अब शहरों को अपना रहे हैं। वैसे तो शहरों की तरफ़ दौड़ने की वृत्ति आजकल अेक सर्वसामान्य वृत्ति बन गयी है, फिर भी महाराष्ट्र के ब्राह्मणों और निज़ाम प्रांत के मुसलमानों की अिस वृत्ति के पीछे अेक विशेष डर और अहंकार

* त्रावणकोर

निरहंकार बनेंगे। अहंकार से किया हुआ संकल्प या तो सफल नहीं होता, या अगर सफल होता भी है तो अुस संकल्प का अर्थ ही नीचे गिरा हुआ होता है।

लेकिन कअी वेदान्ती और बहुत सारे नास्तिक, अीश्वर-प्रार्थना की आवश्यकता महसूस नहीं करते। वेदान्ती कहते हैं–"अगर संकल्प शुभ है तो अुसके लिअे अीश्वर का आशीर्वाद है ही। अगर संकल्प शुभ नहीं है तो अीश्वर की शाब्दिक प्रार्थना से अुसका आशीर्वाद मिलने वाला नहीं है।" यह निर्गुण-वाद है और अत्यंत सत्य है, लेकिन अुसे सामान्य देह-धारी मुश्किल से हज़म कर सकते हैं। अिसलिअे लोक-संग्रह-बुद्धि से वेदांतियों को भक्ति-भावना मंजूर करनी पड़ती है। और अुनके लिअे अुसमें कोअी कठिनाअी भी नहीं होती, क्यों कि निर्गुण समुद्रवत् विशाल होता है, जिसमें सारी सगुण नदियाँ सहज समा जाती हैं।

नास्तिकों को अीश्वर-प्रार्थना का अुत्साह नहीं हो सकता, लेकिन अगर वे वैग्यानिक-बुद्धि रखते हैं तो वे अुसका विरोध भी नहीं कर सकते। वैग्यानिक नम्र होता है। जो चीज़ वह नहीं जानता, अुसका वह निषेध नहीं करता, बल्कि अुसके बारे में तटस्थ रहता है। कोअी भी वैग्यानिक यों नहीं कह सकता कि अीश्वर नहीं है। वह अितना ही कह सकता है कि अीश्वर है या नहीं अिसका कोअी निर्णय मेरे पास नहीं है। तो संदेह का फायदा वह अपने लाखों आस्तिक भाअियों को दे सकता है। जो अीश्वर के आस्तित्व का निषेध करेगा वह अपने लिअे सर्वग्यता का दावा करेगा। जिसे विग्यान का अमृत थोड़ा भी चखने को मिला है, अुसके लिअे यह असंभव है।

और यह भी बात ध्यान में रखनी चाहिये कि विधान-सभा के सदस्य अुस सभा में कोअी व्यक्तिगत नाते से गये हुअे नहीं हैं। वे जनता के प्रतिनिधि हैं। वहां वे अीश्वर की प्रार्थना करेंगे तो अुनके मुख से जनता प्रार्थना करेगी। हिंदुस्तान की जनता अीश्वर को माननेवाली है, लिन-युटांग की भाषा में 'गॉड-अिन्टॉक्सिकेटेड्'-अीश्वरोन्मत्त है। वैसे भी अीश्वर की प्रार्थना में हमेशा व्यक्तित्व भूलना ही होता है, और यहां तो व्यक्तित्व को भूलने की ज़िम्मेवारी अुठाये हुअे लोग ही अुपस्थित हैं। अिसलिअे अिस प्रस्ताव का विरोध कौन किस तरह करेगा, मेरी समझ में नहीं आता।

अेक दूसरे मौक़ेपर अैसा ही अेक प्रस्ताव श्री कामत विधान, सभा में लाये थे जो वहां नापसंद हुआ था। लेकिन अुसमें और अिसमें फ़रक है। अुसमें शपथ लेने की बात थी; और शपथ व्यक्तिगत-विश्वास से ही ली जाती है। अिसलिअे अुस मौक़े पर अीश्वर का नाम लेने में अगर कुछ लोगों को आपत्ति रही तो वह बात मैं समझ सकता हूँ। यहाँ वह सवाल ही नहीं है। यह संमिलित कार्य है और जनता की ओर से है।

परमेश्वर की कृपा से हिंदुस्तान में अेक से अधिक धर्म-पंथ हैं। लेकिन अुसीमें से सवाल पैदा होता है कि अीश्वर की प्रार्थना किन शब्दों में या किस भाषा में की जाय? संगति-वेत्ताओं ने अिस समस्या को सुलझा लिया है। सप्त-स्वरों से संगीत को बाधा न पहुंचे, अैसी तरकीब अुन्होंने निकाली है।

लेकिन अितनी कुशलता अगर हमें न सधी, तो सप्त स्वरों से परे अेक संगीत होता है, जिसे रात्री के नीरव आकाश में असंख्य तारकाअें गाती हैं, अुसका अनुकरण हम कर सकते हैं।

परंधाम, पवनार — विनोबा

६-१-५०

भाषा में घृणा के भाव

अेक कार्यकर्ता लिखते हैं :

"हरिजनों के प्रति हमारी घृणा भाषा में भी प्रवेश कर गयी है। हिन्दी में हरिजनों के लिअे अपमानजनक अैसे अनेक प्रयोग बन गये हैं और अुनका अुपयोग भी होता है। बोलचाल में यह प्रवृत्ति अधिक दिखती है, यद्यपि लेखन में अुसका अभाव नहीं है। सामाजिक समानता के भाव की पूरी पूरी स्थापना के लिअे यह आवश्यक है कि हम सतर्कतापूर्वक अैसे प्रयोगों से बचें और अपनी बोली से अिस दूषण को बिलकुल निकाल दें।

यहाँ मैं अिसके कुछ उदाहरण देता हूँ : किसी मनुष्य् को बुरा-भला कहते हुअे अुसका तिरस्कार करने के लिअे लोग बहुधा अुसे 'भंगी' या 'चमार' कहते हैं। यह बड़ा व्यापक प्रयोग है। क्षुद्रता, बेअीमानी, अस्वच्छता, दुर्मुखता, अशिष्टता आदि अनेक अवगुणों का समावेश अिन शब्दों में कर दिया गया है और अिन्हें अुनका बोधक मान लिया है। विवाह में धोबी, धीवर, नाअी और बाजेवालों आदि को पारिश्रमिक देने की प्रथा को 'कमीन चुकाना' कहते हैं। अिन कहावतों और मुहावरों को देखिये :—'रहे मोची के मोची।' 'सबेरे सबेरे जाने किस भंगी का मुँह देखा।"

पत्र-लेखक का यह दुख सही है। लेकिन घृणा भाषा में प्रवेश कर गयी अिसमें आश्चर्य की बात क्या थी? हरिजनों के प्रति घृणाभाव अितने दीर्घ काल से हमारे मन में रहा कि अुसका प्रतिबिंब हमारी भाषा में नहीं अुठता तभी आश्चर्य की बात होती। वैसे, स्त्रियों के लिअे भी तिरस्कार-सूचक भाव भारत की हर भाषा में पाये जाते हैं। लेकिन स्त्रियों का अैसा नसीब है कि अुनके लिअे आदर-सूचक भाव भी मिलते हैं। कायरता को हम नामर्दी कहते हैं, मानो स्त्रियों के लिअे कायरता भूषण ही है या तो स्त्रियां सारी कायर ही होनी चाहिये। लेकिन अुधर हमने हर अेक स्त्री को देवी भी बना लिया है। अिस तरह स्त्रियों का मामला कुछ खट्टा-मीठा है। तो अुसे हम छोड़ दें। लेकिन श्रमिकों के विषय में हमें घृणा-भाव का शिक्षण ही दिया गया है। धर्मवालों ने अुच्च-नीच भाव को अेक व्यवस्था मान लिया है। अुच्च वे, जो शरीर-श्रम नहीं करते। नीच वे, जो शरीर-श्रम करते हैं। अति नीच वे, जो कठिन शरीर-परिश्रम करते हैं। हरिजन बेचारे अिस आखिरी कोटि में हैं जिनमें भी शिरोमणि भंगी हैं। तो सबेरे ही सबेरे भंगी का मुंह कैसे देखा जाय?

अिसके लिअे अुपाय यही है कि खुद हम शरीर-परिश्रम में लग जायँ और अुसका आरंभ भंगी-काम से करें। मैं भंगी-काम के लिअे जाता था सुरगांव, बड़ी फजर। तो वहां के लोग, जिनको मेरे दर्शन हो जाते थे, मुझे प्रणाम करते थे। मैं अुनसे विनोद में पूछता, किसको प्रणाम कर रहे हो, विनोबा को या भंगी को? देहात के लोग चतुर तो होते ही हैं। वे जवाब देते थे, 'दोनों को।' मैं अुनसे पूछता, बड़ी फजर भंगी को प्रणाम करके कितना पाप संचय करते हो, कुछ सोचा है? तो वे विनोदी लोग अुत्तर देते हैं, 'हम साथ-साथ विनोबा को भी तो प्रणाम करते हैं। अुससे जो पुण्य-संचय होगा, अुसका अुस पाप से मुकाबला हो जायगा। तो हम पाप-पुण्य, दोनों से मुक्त हो जायंगे।' यह तो अेक भाअी का दिया हुआ जवाब ठीक अुसीकी भाषा में मैंने रखा है। आखिर ये लोग मेरे साथ भंगी-काम में आने लगे और

अुस काम की घृणा चली गयी। भंगी शब्द भी पवित्र बन गया। चित्त की अहंता और सामाजिक मलिनता का निरंतर भंग करने वाला भंगी अेक प्रातर् अनुकरणीय पूज्य-मूर्ति है। और संज्ञा भी अुसकी वैसी ही पवित्र है। मलयाळम भाषा में भंगी का अर्थ सौंदर्य होता है। कितना समर्पक है यह अुस शब्द का अर्थ! जब अुद्योग द्वारा लड़कों को तालीम मिलेगी, जब भंगीकाम शिक्षण का वाहन, सेवा का साधन और नित्य-यग्य बनेगा तब भंगी शब्द के अिस अुन्नत अर्थ की हमारे जीवन में प्रतिष्ठा होगी, और वाङ्मय में भी अुसके साथ।

परंधाम, पवनार, ८।१।५० विनोबा

ग्रामों की अर्थव्यवस्था

श्री० झवेरभाअी पटेल लिखते हैं:

"आज की प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था में कच्चा माल तथा जीवन की प्राथमिक आवश्यकताअें पूरी करनेवालों को कम से कम, तथा पक्का माल या फॅन्सी चीज़ें तैयार करनेवालों को अधिक से अधिक वेतन मिलता है। क्यों कि प्रथम कोटि की चीज़ें देहातों में और दूसरी कोटि की शहरों में विभाजित हुअी हैं अिसलिअे अिस अर्थव्यवस्था में संपत्ति का और अिसके पीछे-पीछे बुद्धिमत्ता का भी स्रोत देहातों से शहरों की ओर बहता ही रहता है। यह प्रवाह रोकना हो तो आज के केवल कच्चे माल पैदा करनेवाले देहातों को पक्का माल बनानेवाले बनाना पड़ेगा, तथा देहात से निर्यात होनेवाले कच्चे माल या अनाज घी दूध आदि चीज़ों के अुचित दाम ठहराने पड़ेंगे। आज संगठित मज़दूरों को आराम के साधन तथा जीवनवेतन देने की बात स्वीकृत हुअी है। अुसी बुनियाद पर देहातों के असंगठित मज़दूर तथा किसानों को सुख-सुविधा तथा जीवन-वेतन प्राप्त हो, अुस हिसाब से अुनकी पैदावार के भाव ठहराने चाहिये।

आज अेक ओर जब जनता की आर्थिक समानता की अपेक्षाअें जाग्रत हुअी हैं तब दूसरी ओर चालू अर्थव्यवस्था के दोनों अंग—कच्चे-पक्के माल के विभाजित स्थान तथा भाव—को ज्यों के त्यों कायम करने की प्रवृत्ति ही नहीं, योजनाअें भी बन रही हैं। किंबहुना, खेती की पैदावार के, अनाज के, भाव घटाने की चिल्लाहट शुरू हो गयी है।

सरकार का अिस विषय में क्या कर्तव्य है? क्या अुसे लोकमत स्पष्ट बनने की राह देखते बैठना चाहिये? या लोकहित को देखकर, तथा लोकमानस का जितना परिचय हो गया है अुसका फायदा अुठाकर, अर्थव्यवस्था बदलने की कोशिश करनी चाहिये?"

सरकार का कर्तव्य निःसंदेह यही हो सकता है कि देहात का जीवन जितना स्वयंपूर्ण बनाया जा सके, बनाने की योजना की जाय। अिस विषय में देरी हो रही है, अुसके कअी कारण हैं, जिनमें कुछ समर्थनीय भी हो सकते हैं। लेकिन अुन सबकी चर्चा अभी मैं यहां नहीं करूंगा।

अुन कारणों में अेक यह भी है कि अभी हमारे नेताओं के दिमाग़ अिस विषय में अुतने साफ़ नहीं दीखते। कअी बार वे यों कहते सुनायी देते हैं कि अभी हिंदुस्तान में संपत्ति के विभाजन की बात सोचना ही बेकार है क्यों कि जहां संपत्ति पर्याप्त पैदा ही नहीं होती है वहां विभाजन का क्या सोचें? यह बहुत ही अेकांगी चिंतन है। हमने अपना अेक मंत्र बना लिया है, 'पहिली चीज़ें पहिले करो।' अुसके अनुसार सोचते हैं। 'पहिली चीज़ कौनसी? अुत्पादन या विभाजन?' अुत्तर साफ़ है, 'अुत्पादन।' तो फिर तय करते हैं, विभाजन अभी मत सोचो। यह सोचने का यांत्रिक

ढंग है। लेकिन यांत्रिकता चाहे अुत्पादन में साधक भी हो, सोचने में बाधक होती है। अुत्पादन बिल्कुल ही नहीं होता तो विभाजन की समस्या अुठती ही नहीं। लेकिन जब अुत्पादन थोड़ा भी हो रहा है, तो अुसके साथ विभाजन का भी विचार आता है। पूरा अुत्पादन हुअे तक अिस्तेमाल स्थगित होता तो भी कुछ बात थी। लेकिन खा तो रोज़ रहे हैं। और कुछ को अत्यधिक मिलता है तो कुछ को ज़रूरत से भी कम। और अुन्हींको कम मिलता है जो कि पैदा कर रहे हैं। अगर अैसा भी होता कि विभाजन में विषमता तो बहुत है लेकिन जो पैदा करते हैं, अुनको अधिक मिल रहा है, जो पैदा नहीं करते, अुनको कम मिल रहा है, तो भी बात दूसरी थी। अगर यह भी होता कि काम न करने वालों को बहुत ज्यादह मिलता है लेकिन करनेवालों को भी पर्याप्त मिल जाता है, तो भी सब्र कर सकते थे। लेकिन अभी की हालत काबिल-सब्र नहीं कही जा सकती। अैसी स्थिति में, अुत्पत्ति बढ़ाना मुख्य या अुत्पत्ति का विभाजन मुख्य, अैसा सवाल खड़ा करना निरर्थक ही नहीं अनर्थकारी भी है।

दूसरी वैचारिक भूल अुसमें यह है कि अगर हम अुत्पादन और विभाजन का साथ साथ नहीं सोचते हैं और अुत्पादन बढ़ाने का ही सोचते हैं, तो अुत्पादन के अैसे तरीके हम अख्तियार कर सकते हैं, जिनसे आगे चलकर समान विभाजन केवल असंभव ही हो जाय। अुत्पादन के औज़ार ही अैसे होने चाहिये जो सम्यक्-विभाजन के साथ साथ अुत्पादन बढ़ाते जायँ। वे हैं ग्रामोद्योगी औज़ार। लेकिन आभास होता है कि वे आहिस्ता काम करते हैं। हमें काम की अुतावल हुअी है और अुतावलेपन के कारण ही हमारा काम धीमा पड़ गया है!

जैसे यह सवाल पूछा जाता है कि अुत्पादन को प्राथम्य देना या विभाजन को, वैसे यह भी सवाल अुठाया जाता है कि संरक्षण को प्राथम्य देना या अुत्पादन को? तो कुछ लोगों की अक्ल जवाब देती है, संरक्षण को। जैसे पाकिस्तान के वज़ीर आज़म लियाकत अली ने ज़ाहिर किया था— 'हमें चाहे भूखों रहना पड़े, हम देश के संरक्षण की अुपेक्षा नहीं कर सकते।' हमें भूखों रहना पड़े यह तो बोलने की अेक शिष्ट-पद्धति है। मतलब अुसका यही कि गरीब लोग चाहे भूखों मर जायँ। अिस अक्ल के अनुसार सेना-संवर्धन ही प्रधान हो जाता है, जिसके परिवार में बहुत-सा यंत्र-संभार भी दाखिल होता है। फिर ग्रामोद्योग की कौन सुने?

अुत्पादन के साथ विभाजन का भी सोचने का जब मैं कहता हूं तो अुस विचार का साथ कअी अर्थशास्त्री दे सकते हैं। लेकिन जहाँ मैं ग्रामोद्योग की बात निकालता हूं, वहां अुनमें से बहुत सारे अलग पड़ जाते हैं। मतलब यही कि मेरे जैसों को अभी 'अेकला चलो अेकला चलो' की ही साधना करनी है क्यों कि अिस बात का मुझे भान है। सरकार पर व्यर्थ टीका करने में मैं अपना वक्त ज़ाया नहीं करना चाहता; लेकिन चाहता हूँ कि हमारी योजना के अमल में हम ही लग जायँ। वर्तमान हमारे साथ नहीं है तो भी भविष्य हमारे साथ हो सकता है, अगर हम जनता से संपर्क न छोड़ें और अमली काम में लग जायँ। यह तो मैंने झवेरभाअी के पत्र के निमित्त से मेरे सर्व-सामान्य विचार रख दिये हैं। अब अुनके पत्र में अुल्लिखित अेक दो बातों के विषय में:

देहात की ज़रूरत की चीज़ें, जिनका कच्चा माल देहात में पैदा होता है, देहात में ही बनानी चाहिये। अितना ही नहीं, किसान की व्याख्या

में ही यह बात शुमार समझनी चाहिये। अिसके बग़ैर अुनके खाली समय का पूरा अुपयोग भी नहीं होगा। लेकिन अिसमें बेचने का ख्याल मुख्य नहीं होना चाहिये।

दूध-घी आदि के अुचित दाम ग्रामीणों को मिले यह तो अवश्य होना चाहिये, लेकिन दूध-घी वग़ैरा वे खुद अुपयोग में लायें और बचा हुआ ही बेचें, अैसी स्थिति होनी चाहिये। दूध का अुपयोग वे करने लगेंगे तब शेष दूध, जो वे बेचेंगे, अुचित क़ीमत पर अुठेगा। यही बात फल-तरकारियों के लिअे भी लागू है। 'आपुलें केलें आपण खाय'—अपना पैदा किया हुआ खुद सेवन करें—तुकाराम का यह अुपदेश अमल में आयेगा तो बाज़ार भाव किसानों के के हाथ में रहेगा। लेकिन यह तभी हो सकता है जब अपनी मुख्य मुख्य आवश्यकताओं की चीज़ें वे खुद बना लेते हैं। ग्रामीणों में सहकार बढ़ाना, और ग्राम-अुद्योगों के द्वारा सरकारी मदत की अपेक्षा के बिना, ग्रामों को निजावलंबी बनाना अेक अैसा कार्य है जिसे किसी छोटे क्षेत्र में भी सिद्ध किया जाय तो अुससे सरकार को भी मार्गदर्शन मिलेगा। हमारी अखिल-भारतीय-संस्थाअें अगर अखिल-भारतीयता का स्वांग थोड़ी देर के लिअे अलग रखकर स्थान-निष्ठ स्वदेशी-धर्म की अुपासना में लग जायं तो अुनकी अखिल भारतीयता भी शीघ्र सार्थक हो सकेगी, अैसे मैं मानता हूँ।

अनाज का अुचित दाम किसान को मिलना चाहिये यह तो मानी हुअी बात है, लेकिन क्यों कि अनाज अेक बुनियादी वस्तु है, अिसलिअे अुसके 'अुचित दाम' का अर्थ ज्यादातर बढ़िया नहीं रहता है, घटिया ही रह सकता है। खेती पर काम करने वाले मज़दूरों को मज़दूरी का मुख्य हिस्सा अनाज में मिले, जिसका परिमाण निश्चित हो और सरकारी लगान अनाज में वसूल किया जाय, अितना भी अगर तुरंत हो जाय तो अनाज का कंट्रोल अुठाने में मुश्किल नहीं होगी और किसान को राहत मिल जायगी।

परंधाम, पवनार
ता. ८-१-५०

विनोबा

आज की महंगाअी और अिंग्लैंड की कुशलता

गये महायुद्ध के कारण दुनिया भर की ज़िंदगी महंगी हो गयी है। भारत वैसे ही अेक कंगाल मुल्क बना हुआ है। अिसलिअे यह महंगाअी यहाँ के लिअे अति कठिन हो गयी है और अुसके कारण नैतिक गिरावट भी बहुत हो रही है, यह सब हम अनुभव कर रहे हैं। बंगाल के अकाल में लोग बड़ी तादाद में मरे, अुस तरह अभी भूखों मरते हुअे दीख नहीं पड़ते, क्यों कि जीवन की आशाअें और वासनाअें मनुष्य को यकायक मरने नहीं देतीं। नतीजा अुसका प्रति-क्षण शारीरिक-क्षय और नैतिक-पतन में होता है। हिंदुस्तान मज़दूर सेवक संघके अंग्रेज़ी मुखपत्र 'वर्कर' में दुनियाभर के बहुत सारे राष्ट्रों की महंगाअी के अंक दिये हुअे हैं। हिंदुस्तान की महंगाअी युद्ध-पूर्व की तुलना में युद्ध के बाद १९४८ तक २०५ फ़ी सदी बढ़ गयी अैसा हिंदुस्तान का निर्देश है। दूसरे कअी देशों के भी निर्देश अैसे ही या अिससे भी कुछ अधिक भयानक हैं। जपान ३२०, ब्रह्मा ३४०, अीरान ६९६, अीराक ६२१, सीलोन १६३, ये हमारे पड़ौसियों के नमूने हैं। चीन का तो सवाल ही नहीं, वहां राज्य-क्रांति हो गयी है। अिसी तरह यूरप और अमरीका के कअी देशों का हाल है। खुद अमरीका के संयुक्त-संस्थानों का भी निर्देश ७० फ़ी सदी बढ़ा हुआ है। अिस तरह महायुद्ध की लपेट में जो आये और जो न आये, सबको अुसका अभिशाप भुगतना पड़ रहा है।

'हमारे साथ दूसरे देशों को भी तकलीफ़ है', अिस ग्यान में अगर समाधान देने की शक्ति है तो हम समाधान मान सकते हैं। लेकिन ज़िंदगी के निर्देश के आँकड़े ही सिर्फ़ देश की सुखी और दुखी हालत को नहीं बता सकते हैं यह भी ध्यान में रखना चाहिअे। जिन को पूरी रोटी के साथ रोज़ तीन रतल दूध मिलता था, अुनको ढाअी रतल पर रहना पड़े, और जिनको रोटी ही मुश्किल से आधी मिलती थी अुनको वह और भी कम मिले, तो ये दोनों अपकर्ष, चाहे अंकों में समान भी हों, वस्तुस्थिति में समान नहीं हो सकते।

लेकिन, सब देशों की ज़िंदगी के निर्देशों को देखने पर, अिग्लैंड का निर्देश, जो सबसे कम है, अपनी अद्वितीयता के कारण ध्यान खींचता है। अिग्लैंड का निर्देश सिर्फ़ दस फ़ी सदी बढ़ा हुआ है। अिग्लैंड का निर्देश बहुत कम बढ़ा है अितना तो मैं जानता था लेकिन वह अितना कम होगा अिसका मुझे ख़याल नहीं था। अिग्लैंड महायुद्धों की लपटों में था, बड़ी आफ़तों से घिरा हुआ था, वहां की आर्थिक अवस्था में भी अुथल पुथल होने की बातें हम कभी दफ़ा पढ़ते थे; अितना सब होते हुअे वहां की सरकार अपने निर्देश को अितना क़ाबू में रख सकी, यह बात निःसंशय वहां की मज़दूर-सरकार के लिअे प्रशंसनीय है। लेकिन अिसका श्रेय केवल वहां की मज़दूर सरकार को ही नहीं है, समूचे अिंग्लैंड देश की कुशलता और व्यवस्था-शक्ति को है। ठीक समय हिन्दुस्थान पर से अपनी सत्ता अुठा लेने में अुन्होंने जिस कुशलता का परिचय दिया वही यह कुशलता है। सोचने पर ध्यान में आयेगा कि हिंदुस्थान को मुक्त कर देना भी वहां की ज़िंदगी का निर्देश काबू में रख सकने का अेक कारण हो सकता है! बहुत से लोग कहते हैं कि अिंग्लैंड अब दोयम दर्जे का देश बन गया है। लेकिन दोयम दर्जे का देश बनने में भी कुशलता हो सकती है, और अव्वल दर्जे का बने रहने में या बनने की कोशिश करने में भी अकुशलता हो सकती है। अुत्तम दुनिया का तो यही लक्षण होगा कि अुसमें सब देश समान दर्जे के बन जायँ। अिंग्लैंड से हमें बहुत कुछ सीखने जैसा है।

परंधाम, पवनार
११।१।५० विनोबा

खादी का चित्र

पिछड़े हुअे प्रांत

सर्वोदय के गये अंक में खादी-अुत्पत्ति और वस्त्र-स्वावलंबन के तुलनात्मक आंकड़े दो वर्ष के दिये हैं। खादी-अुत्पत्ति के आंकड़ों को तो मैं अभी नहीं सोचता हूं, लेकिन वस्त्र-स्वावलंबन के आंकड़ों का थोड़ा प्रकट अध्ययन करना चाहता हूं। चरखा-संघ का मुख्य ध्यान वस्त्रस्वावलंबन पर ही अभी केंद्रित है। अुस लिहाज़ से देखते हुअे, गये वर्ष की तुलना में अिस वर्ष हम बहुत ज्यादा आगे बढ़े हुअे नहीं दीखते। कुछ प्रांत में तो पिछड़ गये हैं। पिछड़े हुअे प्रांत में महाराष्ट्र की गिनती है। यह मेरी अपेक्षा के बाहर है। महाराष्ट्र का आंकड़ा वर्ग गज़ों में गये साल ३५५३५ और अिस साल २०७१४ है।

गुजरात की प्रगति

महाराष्ट्र अितना कैसे पिछड़ गया होगा, समझ में नहीं आता। मैं तो मानता था कि महाराष्ट्र स्वावलंबी खादी-निष्ठा में काफ़ी आगे बढ़ा हुआ होगा। अिससे अुलटे वह नीचे गिर रहा है। अुसके पड़ौसी गुजरात के साथ अुसका कोअी मुक़ाबला नहीं रहा। गुजरात का गये साल का आँकड़ा महाराष्ट्र से चार गुना था, अिस साल का दस गुने से ज्यादह है। गुजरात गये साल से अिस साल डेढ़ गुना बढ़ा है, और महाराष्ट्र आधे के करीब रह गया है। सारे हिंदुस्तान के

कुल आंकड़े का दो-तिहाअी से कुछ ही कम हिस्सा अकेले गुजरात का है। जहाँ गुजरात के लिअे यह अच्छी बात है, वहाँ दूसरे प्रांतों के लिअे दुखदायी है।

आंध्र और हैद्राबाद

गिरे हुअे प्रांतों में आंध्र और हैद्राबाद की भी गिनती है। आंध्र थोड़ा गिरा है, लेकिन हैद्राबाद तिहाअी से भी कम रह गया है। हैद्राबाद का तो मुझे आश्चर्य नहीं लगा, क्यों कि वहां का सार्वजनिक जीवन आपस-आपस के वैमनस्य के कारण बहुत निर्वीर्य हो चुका था। अब शायद कुछ चेतना आयेगी अैसी हम आशा करें। लेकिन आंध्र भी नीचे गिरा है, यह सोचने की बात है। अिस तरह आंध्र के कार्यकर्त्ताओं का सत्त्व अगर क्षीण होता जायगा तो कम्यूनिस्टों का अुपद्रव, अुस प्रांत में मचा है, अुसका अिलाज कैसे हो सकेगा? आंध्र में तो साहित्य-प्रचार भी शून्यवत् है। अिस तरफ मैंने आंध्र-वालों का ध्यान खींचा भी है। खादी-विद्यालय, सेवाग्राम में भी अिस साल का आंकड़ा गये साल से दो-तिहाअी रह गया है। वर्धा के ग्रामसेवा-मंडल में जो काम होता होगा, अुसकी गिनती किस आंकड़े में है, मालूम नहीं।

व्यवस्था का अभाव

युक्त-प्रांत में जगह जगह लोक-सेवक-संघ स्थापित हुअे हैं, अिसलिअे जिग्यासू नज़र अुसका आँकड़ा देखने को दौड़ती है, तो अुसके दोनों वर्षों के 'आँकड़े नहीं मिले' अैसी टिप्पणी नीचे दी है। बिहार के भी आँकड़े गायब हैं। चरखा संघ के रिपोर्टों की यह हमेशा विशेषता रही है कि अुसको कहीं न कहीं के आँकड़े मिलते नहीं हैं। युक्त प्रांत और बिहार स्वतंत्र हुअे होंगे तो भी अुनके आंकड़े तो कुल रिपोर्ट में आने ही चाहिये। अुत्कल का अिस साल का आँकड़ा नहीं है, गये साल का है। कुल रिपोर्ट में आँकड़ों का शामिल न किया जा सकना, व्यवस्था या परस्पर-संमेलन के अभाव का निदर्शक है। हमारे काम में अैसा नहीं होना चाहिअे। जैसे सब ओर का पानी सहज गति से समुद्र में पहुंचता है, वैसे हमारे काम की भी रचना होनी चाहिअे।

प्रगतिशील अन्य प्रांत

प्रगतिशील प्रांतों में बंबअी शहर डेढ़ गुना बढ़ा है, जिसका श्रेय भी शायद गुजरात को ही होगा। कर्नाटक और राजस्थान तिगुने के करीब बढ़े हैं। पंजाब और केरल भी डेढ़ गुना बढ़े हैं। तमिळनाडु सवाअी है। यहां सब प्रांतों की सैर खतम होती है।

गुजरात का हिस्सा

कुल हिंदुस्थान का आँकड़ा गये वर्ष से अिस वर्ष करीब ७१००० बढ़ा है। याने सवाया हुआ है। लेकिन गुजरात अकेला ६८००० बढ़ा है। मतलब अुसका यही कि बढ़ावे की सारी जिम्मेवारी गुजरात ने अुठायी है और बाकी प्रांतों ने कुछ घटाव और कुछ बढ़ाव करके प्रगति में शून्यता संपादन की है।

वस्त्र-स्वावलंबन वि० खादी-अुत्पत्ति

चर्खा-संघ मुख्य ध्यान वस्त्र स्वावलंबन पर देता है, खादी-अुत्पत्ति पर नहीं देता; फिर भी खादी अुत्पत्ति पौने दो गुने से ज्यादह बढ़ी है।

खादी के आँकड़ों का मैं हमेशा बारीकी से अध्ययन करता आया हूं। आजकल मैं बीमार हूं तो शरीर का भी वज़न बीचबीच में देख लेता हूं। अुस वज़न के आंकड़े से बहुत अधिक दिलचस्पी मुझे खादी के आकड़ों में रहती है। काम का जो चित्र ये आंकडे बताते हैं वह चिंता-जनक है।

जाग जाओ

अध्ययन थोड़ा और कर लें। खादी-धारी को हर साल बीस गज़ खादी चाहिये अैसा मानें तो वस्त्र-स्वावलंबी खादी हिंदुस्तान भर में १८००० मनुष्यों की हुअी है। हिंदुस्तान में तीन सौ

ज़िले और अठारह सौ तहसीलें मान लें तो हर ज़िले में साठ और हर तहसील में दस जनों का वस्त्र-स्वावलंबन हो रहा है। खादी को आगे बढ़ाने की ज़िम्मेवारी अिन दस जनों की है। वे दस भी जाग्रत हो जायँ और अपने कुटुंब और पड़ौसियों से आरंभ करें तो भी काम बढ़ सकता है। आखिर ये १८००० भी किसने निर्माण किये? अेक आया था अुसने। तो ये १८००० भी कभी सारा भारत बन सकते हैं। लेकिन शर्त अुसकी अेक है, सरकार की तरफ़ हमें देखते नहीं रहना चाहिये। कारण सरल है। वह ही हमारे तरफ देखती है। वह कहेगी, 'आप अठारह हज़ार के अठारह लाख बन जाअिये, तो बाद अुनके छत्तीस करोड़ बनाने का ज़िम्मा हम अुठा लेंगे।' जिस अेक ने यह अठारह हज़ार निर्माण किये अुसको भी तो सरकार की मदद नहीं मिली थी। तो मैं अपने सहभावियों से अुपनिषद् की भाषा में कहूंगा, अुठो जाग-जाओ, और तज्ञों के पास पहुँचकर काम करना सीख लो।

परंधाम, पवनार विनोबा
११-१-५०

गुरुवायूर की ग्यारस

दक्षिण के केरळ प्रांत में गुरुवायूर नामक अेक विख्यात क्षेत्र है। हमारे अिधर अुसकी विशेष जानकारी किसी को नहीं है। सोलह साल पहिले वहां के मंदिर-प्रवेश के सत्याग्रह के सिलसिले में गुरुवायूर का नाम चमक चुका था। अब फिर लोग अुसे भूल गये होंगे। लेकिन केरळ प्रांत में अुसका महत्त्व काशी के समान है। 'मातृभाषा' नामक मलयाळम दैनिक के 'रवि-संस्करण' में अभी हाल ही में अेक लेख निकला है, जिसमें गुरुवायूर क्षेत्र की वृश्चिक मास की अेकादशी—यात्रा का वर्णन आया है।

अपने यहाँ महीनों के नाम, अुस महीने में चंद्रमा पूनम के रोज़ जिस नक्षत्र में रहता है, अुस नक्षत्र पर से पड़े हैं। अुदाहरणार्थ चैत्र याने वह महीना, जिसमें पूनम को चंद्र चित्रा-नक्षत्र में रहता है। अुनके यहाँ महीनों के नाम अुस राशि पर से पड़े हैं, जिसमें सूरज हर माह प्रवेश करता है। 'वृश्चिक' मास याने वह महीना, जिसमें सूर्य वृश्चिक राशि में जाता है। गुरुवायूर की वृश्चिक-शुक्ल अेकादशी याने हमारी मार्गशीर्ष (अगहन)-शुक्ल अेकादशी। अिन दिनों यही अेकादशी गीता-जयंती के नाम से मानी गयी है।

गुरुवायूर की अिस यात्रा से गीता-जयंती की कल्पना को पुष्टि देनेवाला अनुमान अिस पत्र के लेखक ने निकाला है। यद्यपि वह पूरा अितमिनान दिलानेवाला नहीं है, मुझे वह प्रिय लगा है। थोड़े में अुसका सारांश अिस प्रकार है :—

१. गुरुवायूर के मंदिर की मूर्ति यद्यपि चतुर्भुज विष्णु की दिखती है, तथापि अुस देवता को वहां के पंडित लोग पार्थ-सारथि की मूर्ति के रूप में पहचानते हैं। गीता जब कही जा रही थी तब भगवान् का रूप चतुर्भुज था अैसा मानते हैं। अर्जुन ने कहा ही है कि 'हे विश्व मूर्ते, तुम पूर्ववत् चार भुजाओं-वाले बनो।'

२. अभी अभी मंदिर-प्रवेश का जो कानून हुआ है अुसके पहिले यह मंदिर भी अस्पृश्यों के लिअे खुला नहीं था। तब भी अिस अुत्सव की हद तक, दशमी अेकादशी और द्वादशी तीनों रोज़, यह पार्थ-सारथि का मंदिर तमाम जातियों के लिये खुला रहता था :

विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि
शुनिचैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।

गीता-जयंती के अुपलक्ष्य में अिस अुपदेश का अमल हुआ है अैसा मान सकते हैं।

३. जैसे पंढरपुर में आषाढ़ी, कार्तिकी की यात्राअें रहती हैं, वैसी यहाँ वृश्चिक और कुंभ मास की यात्राअें रहती हैं। लेकिन कुंभ के दिन सब के लिअे अनुज्ञा नहीं होती है। अिस वृश्चिक—यात्रा पर ही अनुज्ञा

रहती है। स्वाभाविक ही यह वृश्चिक-यात्रा काफ़ी बड़ी होती है।

४. अेकादशी से अठारह दिन पहिले दीपाराधना शुरू होती है। यह भी गीता के अठारह अध्यायों का स्मारक माना जा सकता है।

५. अिस मंदिर में चलने वाले अन्य सब अुत्सवों का खर्च मंदिर की तरफ़ से चलता है। लेकिन अिस अेक अुत्सव का खर्च मंदिर की तरफ से नहीं होता है। आम जनता अुसे अुठा लेती है।

मैंने शुरू में ही कह दिया है कि अितने से कोअी विशेष सिद्धि नहीं होती है और न मूल लेखक का प्रयत्न वैसी सिद्धि करने का है। तथापि गीता-जयंती से अिस अुत्सव का संबंध मानने में हानि कुछ नहीं है। और अुसका अुस तरह योग्य अुपयोग किया जाय तो बहुत लाभ मिल सकता है। अचरज की बात तो यह है कि अुत्सव-विधि में गीतापठन का अंतर्भाव नहीं दीखता। अिसका कारण कुछ भी हो, लेकिन भविष्य में अितना सुधार हो जाय तो अच्छा। अिसके अलावा अुस रोज़ गीता की सिखावन का दर्शन प्रत्यक्ष कृति-द्वारा होना चाहिये। जातीय अुच्च-नीचता मानी नहीं जाती है यह लक्षण अुत्तम ही है। लेकिन सबको चाहिये कि सामुदायिक कर्मयोग की विधि चलायी जाय। मैं तो सुझाअूँगा कताअी, जो सर्वसुलभ और सर्वोपयोगी है।

समाजनेताओं का काम है कि वे धर्मविधि और धर्मबुद्धि को अुत्तरोत्तर अुज्ज्वल बनाते जायं। अिसमें खंड नहीं पड़ना चाहिये। धर्म की सत्ता, जो जनता के मानसपर है, अुपेक्षणीय नहीं, आदरणीय है। और अगर योग्य संशुद्धि की जाय तो परम लाभदायी है। धर्म-सत्ता अहिंसक सत्ता का अुत्तम नमूना है। अगर मैं अपना नित्य संध्योपासन न करूं तो धर्मसत्ता मुझे कोअी बाह्य दंड नहीं देती। धर्म-निष्ठा रखते हुअे मेरा मन ही मुझे जो कुछ दंड देगा सो सही।

परंधाम, पवनार ३०-१२-४९ विनोबा

जागतिक शांति की योजना

शांति का जप सारा मानव-समाज अनादि काल से आजतक करता ही आ रहा है। लेकिन अभी तक जैसी चाहिये वैसी शांति वह हासिल नहीं कर सका है। फिर भी निराशा का कोअी कारण नहीं है। अगर हम ठीक से देखें तो मालूम होगा कि मानव के जीवन में अधिकतर शांति ही रही है। लेकिन क्यों कि वह हमेशा की हालत है, महसूस नहीं होती, और जितने भी अशांति के क्षण हैं, ध्यान खीचते हैं। अशांति का अेक क्षण भी युग—सा मालूम होता है और शांति का अेक ज़माना गुज़र जाय तो भी वह पलक में बीतता है। जिग्यासू ने ऋषि से पूछा, 'आत्मा का स्वरूप बताअियेगा।' तो ऋषि कुछ बोले नहीं। जिग्यासू ने दोबारा पूछा, तो ऋषि का अपना वही मौन। फिर से पूछा तो ऋषि बोले—'आत्मा का स्वरूप तीन तीन बार मैं बता चुका, फिर भी नहीं समझे हो, तो शब्द से क्या समझोगे? लेकिन सुनो, आत्मा शांतस्वरूप है।'

अिस ऋषि-वाक्य का हम चिंतन करें तो शांति का रास्ता सूझ जायगा। शांति के लिअे न चाहिये संघटना, न चाहिये विघटना। अुसके लिअे चाहिये देह—भिन्न व्यापक आत्मा का भान, निर्मल चित्त और संयमशीलता। शरीर मुझे सौंपा गया है, लेकिन मेरा नहीं है, मेरे लिअे नहीं है। समाज का है, समाज के लिअे है। सृष्टि का है, सृष्टि के लिअे है। "फिर तेरा क्या है?" "सारा समाज और सारी सृष्टि मेरी है", यह है जागतिक-शांति की योजना!

परंधाम, पवनार
३१-१२-४९

विनोबा

('जीवन-साहित्य' के लिअे लिखा गया संदेश—दा०)

६९. जिसे रात कहती है दुनिया तमाम
निगाहों में आरिफ़ की दिन है मुदाम
जो दिन अहले--आलम के नज़दीक है
वह आरिफ़ की शब है कि तारीक है

جسے رات کہتی ہے دُنیا تمام
نگاہوں میں عارف کے دِن ہے مُدام
جو دن اہلِ عالَم کے نزدیک ہے
وہ عارف کی شب ہے کہ تاریک ہے

७०. समंदर में ग़ायब हो दरिया हज़ार
रहेगा वह लबरेज़ और बावक़ार
सब अरमाँ हो गुम जिनके सीने में बस
वही पायें राहत न अहले--हवस

سمندر میں غائب ہو دریا ہزار
رہے گا وہ لبریز اور با وقار
سب ارماں ہوں گم جن کے سینے میں بس
وہی پائیں راحت نہ اہلِ ہوس

७१. जो अिन्साँ करे ख्वाहिशें दिल से दूर
हवस का न हो जिसके दिल में फ़ुतूर
न अुसमें खुदी हो न हो मेरतेर
सुकूँ अुसको हासिल है दिल अुसका सेर

جو انساں کرے خواہش دل سے دوٗر
ہوس کا نہ ہو جس کے دل میں فُتوٗر
نہ اُس میں خُودی ہو نہ ہو میر تیر
سُکوں اُس کو حاصل ہے دل اُس کا سیر

७२. यही है मुक़ामे-वसाले-खुदा
जहाँ आके हों सब तवह्हुमु--फ़ना
दमे-वापसीं भी जो यह ग्यान हो
तो हासिल अुसे ब्रह्म-निर्वाण हो

یہی ہے مُقامِ وصالِ خُدا
جہاں آکے ہوں سب توہُم فنا
دمِ واپسیں بھی جو یہ گیان ہو
تو حاصل اُسے بْرہم نِروان ہو

खतम

ختم

---

६९. आरिफ़–ग्यानी, मुनि; अहले-आलम–सबभूत-प्राणी; शब–रात; तारीक–अंधेरा। ७०. लबरेज़–मुँहतक भरा हुआ, सब ओर से परिपूर्ण; बावक़ार–अचल प्रतिष्ठावाला, स्थिर, अ[illegible]ग; अहले-हवस–भोगलुब्ध। ७१. फ़ुतूर–विकार; खुदी–अहंकार; मेरतेर–ममत्व, मेरा-तेरा; सुकूँ–शांति; सेर–तृप्त। ७२. मुक़ामे-वसाले-खुदा–अीश्वर-मिलन का स्थान, ब्राह्मी-स्थिति; तवह्हुम–भ्रम, मोह; फ़ना–नष्ट; दमे-वापसी–अंतकाल, आखरी साँस।

आवश्यक-सूचनाओं :

(१) हमारे नये-पुराने ग्राहकों से प्रार्थना है कि वे पत्र-व्यवहार करते समय—

(अ) अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें।

(आ) पता पूरा और बिलकुल साफ़ साफ़ लिखें।

(अि) अंक प्राप्त न होने पर पहले डाक-घर में जाँच करके अुनके अुत्तर-सहित ही पत्र भेजें।

(अी) अंक ता. १५ और १७ के बीच डाक-घर में जाते हैं और वहाँ १—२ दिन लग जाते हैं; अतः अंक न मिलने की शिकायत १० दिन के बाद ही की जावे।

(अु) चंदा भेजते समय मनिऑर्डर के कुपन पर भी पूरा और साफ पता लिखा जाय।

(अू) जो नये ग्राहक बनते हैं और जो अंक न मिलने पर नया अंक मांगते हैं, अुन्हें साधारणतः ता. १५ से २१ के बीच में ही अंक भेजे जायंगे, क्यों कि डाकघर की रजिष्ट्री के अनुसार नियत डाक व्यय से अिन्हीं सात दिनों में अंक भेजे जा सकते हैं।

(२) विक्रेताओं से व ग्राहक बनानेवालों से प्रार्थना है कि—

(अ) वे ग्राहक बनाते समय अुन्हें साफ़ बता दें कि जो अंक प्राप्य होंगे वे ही मिलेंगे। अतः प्रारंभ से ही ग्राहक बनाने का आग्रह न रखा जाय। अभी पहले तीन अंक बिलकुल समाप्त हैं।

(आ) विक्रेताओं को, जो अेजंट के रूप में काम करते हैं, केवल फुटकर बिक्रीपर ही प्रति रुपया तीन आने के हिसाब से कमीशन दिया जायगा, वार्षिक और छःमाही ग्राहक बनाने पर नहीं।

(अि) वे न अुधार मंगा सकेंगे, न बची हुअी प्रतियाँ वापस कर सकेंगे।

(अी) जो ग्राहक बनावें, वे अुसका चंदा ग्राहक के खर्च से ड्राफ्ट के या मनि-ऑर्डर के रूप में ही भेजें। ड्राफ्ट वर्धा की बैंक पर ही होना चाहिये।

(३) पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों से—

(अ) 'सर्वोदय' से कोअी भी लेख-टिप्पणी आदि अुध्दृत या अनूदित की जा सकती है। सिर्फ़ सर्वोदय से यह ली गयी, अितना अुल्लेख ज़रूर चाहिये।

(आ) जिस अंक में अुद्धरण आदि छपे, अुसकी दो प्रतियाँ कार्यालय को अवश्य भेजी जानी चाहिये।

(४) ग्राहकों की सुविधा के लिअे निम्न स्थानों पर चंदा जमा करने की और सुविधा की गयी है, जिसका लाभ वे अवश्य अुठावें :—

१. सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस, नअी दिल्ली
२. श्री. काशीनाथजी त्रिवेदी, अिंदौर
३. श्री. वैजनाथजी महोदय, अिंदौर
४. बिहार के समस्त खादी-भांडार

—व्यवस्थापक

Reg. ... No. 1232

प्राप्त पुस्तकें आदि

नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद

धर्ममंथन–(गुजराती), ले. महात्मा गांधी, पृष्ठ–३५२, मूल्य दो रुपया।

गांधीजी की संक्षिप्त आत्मकथा–(गुजराती)
सं. मथुरादास त्रिकमजी, पृष्ठ–२५८, मूल्य अेक रुपया।

आश्रम जीवन–(गुजराती) ले. महात्मा गांधी, पृष्ठ–११२, मूल्य छः आना।

अ. भा. अखिल चरखा संघ प्रकाशन, सेवाग्राम

चरखे की तात्त्विक मीमांसा–(हिंदी),
ले. श्रीकृष्णदास जाजू, पृष्ठ–७२, मूल्य अेक रुपया।

मध्यम पिंजन–(हिंदी),
ले. मथुरादास पुरुषोत्तम, पृष्ठ–१००, मूल्य सवा रुपया।

सर्वोदय प्रदर्शनी–(हिंदी),
प्र. अ. भा. चरखा संघ, सेवाग्राम, पृष्ठ– ५२, मूल्य अेक रुपया।

सरकारी प्रकाशन

अबाअुट अिंडिया–(अंग्रेज़ी)–मिनिस्ट्री ऑफ अिन्फ़ूरमेशन अँड ब्रॉडकास्टिंग,
पृष्ठ, ६०, मूल्य डेढ़ रुपया।

अॅन्युअल [illegible] ऑफ दी अिंडियन कौन्सिल ऑफ़ अॅग्रीकल्चर रिसर्च—
फॉर १९४७–४८ (अंग्रेज़ी)

अॅन्युअल रि[illegible] ऑफ दी अिंडियन सेंट्रल शुगरकेन कमेटी—
फॉर दी अियर १९४६–४७ (अंग्रेज़ी)

अचिव्हमें[illegible] ऑफ दी अिंडियन सेंट्रल शुगरकेन कमेटी अँड अिट्स फ्युचर निड्स
(अंग्रेज़ी)

शुगरकेन [illegible] डेव्हलपमेंट अिन अिंडिया अँड अे रिझ्युम ऑफ वर्क कॅरिड आअुट
ड्युरिंग रिसेंट टाअिम्स् (अंग्रेज़ी)

[illegible] ऑफ दी सॅकंड मीटिं[illegible] अॅडवायज़री कौंसिल ऑफ अिंडस्ट्रीज़,
हेल्ड [illegible] २७ अँड २८ जुलाअी १९४९ (अंग्रेज़ी)

तथा अन्य फुटकर ज्यूट औ[illegible] मिलों में प्राप्त हुअी हैं।

प्रकाशक–वल्लभस्वामी, [illegible] संघ, वर्धा (म [illegible])
मुद्रक–नारायणदास [illegible] प्रबंधक, श्रीकृष्ण प्रिंटिंग वर्क्स, वर्धा
[अिस [illegible] पृष्ठ ३२[illegible] से ३२६ तक हिंदु [illegible]
और पृ. २६१ से ३६८ तक मास्कर छापखाना, वर्धा में [illegible]]